ISBN 978-93-81076-04-0 अंक 17 मार्च, 2011

धारणा

आरोग्यम् सुखसम्पदा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान
(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)
मुनीरका, नई दिल्ली-110067

अंक - 17 मार्च, 2011

धारणा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान
(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)
मुनीरका, नई दिल्ली-110067
वेबसाइटः www.nihfw.org
ई-मेलः director@nihfw.org

प्रमुख संपादक
प्रोफेसर देवकी नन्दन

प्रबंध संपादक
प्रोफेसर यादे लाल टेखरे

उप संपादक
गणेश शंकर श्रीवास्तव

संपादकीय मंडल
प्रोफेसर वी.के.तिवारी, सदस्य
प्रोफेसर उत्सुक दत्ता, सदस्य
डा. संजय गुप्ता, सदस्य
डा. अंकुर यादव, सदस्य
अरविन्द कुमार - सदस्य सचिव

डिजाइन एवं उत्पादन
हेमन्त कुमार उप्पल
रवि तिवारी

- 'धारणा' में व्यक्त विचार लेखकों के व्यक्तिगत विचार हैं तथा यह आवश्यक नहीं है कि यह विचार संस्थान की नीतियों के द्योतक हों।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067 द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

आमुख

'धारणा' के सत्रहवें अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। यह पत्रिका जन स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। साथ ही इससे राजभाषा हिन्दी में तकनीकी लेखन को भी भरसक प्रोत्साहन मिल रहा है।

मुझे यह उल्लेख करते हुए भी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि राजभाषा नीति के क्रियान्वयन की दिशा में चल रहे प्रयासों के अंतर्गत और जन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विषय से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से तथा देश के अनेक भागों से लेख भेजने वाले लेखकों, संस्थान के संकाय सदस्यों एवं कर्मचारियों में तकनीकी विषयों पर हिन्दी लेखन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य की ओर 'धारणा' सफलतापूर्वक अग्रसर है। इसकी पुष्टि 'धारणा' के पिछले अंकों के प्रति पाठकों की सुखद एवं उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से हुई। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत अंक को भी पाठकों की सराहना एवं प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

'धारणा' के प्रस्तुत अंक में हमने स्वास्थ्य के नाना प्रकार के पक्षों पर आधारित ऐसे लेखों का समावेश किया है जिससे जन सामान्य एवं स्वास्थ्य क्षेत्र से जुड़े पाठकों तथा परिवार कल्याण एवं इससे सम्बद्ध जिज्ञासुओं को उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकेगी। सुधी पाठकों और अनुभवी लेखकों से हम यह भी आशा करते हैं कि वे आगामी अंकों में प्रकाशन हेतु जन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण से सम्बद्ध विषयों पर अपने मौलिक एवं सारगर्भित लेख प्रेषित कर हमें अनुगृहीत करेंगे। आशा करता हूँ कि पाठकों की प्रतिक्रियायें, सुझाव एवं मार्गदर्शन 'धारणा' के आगामी अंक को परिष्कृत रूप में प्रकाशित करने में सहायक सिद्ध होंगे।

प्रोफेसर देवकी नंदन
निदेशक

संपादकीय

मानव शरीर प्रकृति का एक अद्‌भुद वरदान है। मनुष्य का यह कर्तव्य है कि प्रकृति के दिए हुए इस वरदान का वह यथोचित सम्मान एवं संवर्धन करे। साथ ही मनुष्य प्रकृति के उन नियमों का पालन करे जो मनुष्यत्व की भावना को पल्लवित और पोषित करती हों। मानव देह प्राप्त करने के पश्चात् यह समझना आवश्यक है कि मनुष्यत्व के इस आकाश को छूने के लिए अपने शरीर को माध्यम बनाना अपरिहार्य है, क्योंकि हमारे जीवन व्यवहार की समस्त संवेदनाओं अथवा बौद्धिक कौशलों का आश्रय यह शरीर ही होता है। अतः किसी भी परिस्थिति में इस शरीर का स्वस्थ होना नितांत आवश्यक है। जन-स्वास्थ्य की अवधारणा वस्तुतः इसी भावना के मूल में निहित है। निस्संदेह, भारत अपने प्राचीनतम काल से न सिर्फ आध्यात्मिक दृष्टि से ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संवर्धन का प्रणेता रहा है अपितु वह 'आयुर्वेद' जैसे व्यवस्थित विज्ञान से भी समृद्ध है। आधुनिक युग में भारत विश्व का वह अग्रणी देश है जिसने राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रारंभ किया।

'धारणा' के प्रकाशन में हम जनस्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं को समाहित करते हैं। यद्यपि वर्तमान में भारत ने मातृ-शिशु स्वास्थ्य सहित अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है, टीकाकरण, प्रतिरक्षीकरण, स्वच्छता संबंधी अभियानों के साथ-साथ पर्यावरण संतुलन एवं यातायात नियंत्रण जैसे कई कार्यक्रमों को भारत सफलतापूर्वक संचालित कर रहा है। किन्तु वस्तुतः अनुभव किया जाता है कि जनाधिक्य एवं जनस्वास्थ्य की अन्यान्य चुनौतियों के होते हुए हमारी सफलताएँ अपर्याप्त हैं। स्वास्थ्य और व्यावहारिक जीवन से सरोकार रखने वाले कई विषयों को ध्यान में रखते हुए धारणा के इस अंक में नाना प्रकार के लेखों जिनमें - स्वास्थ्य का अधिकार, मानसिक स्वास्थ्य, सुरक्षित भोजन, वृद्धावस्था, गर्भनिरोधक उपाय, महिला भ्रूण रक्षण, रक्ताल्पता एवं स्वच्छता आदि को संदर्भित करने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही, स्वास्थ्य से जुड़े कुछ अप्रत्यक्ष किन्तु महत्वपूर्ण विषयों पर भी सामग्री प्रस्तुत की जा रही है, जिनमें वर्तमान जीवन पद्धति एवं स्वास्थ्य समस्याएँ, सड़क यातायात और गृहस्वच्छता जैसे विषय शामिल हैं।

'धारणा' के इस अंक का प्रकाशन संस्थान के निदेशक प्रोफेसर देवकी नंदन की प्रेरणा से ही संभव हो सका है। विद्वान लेखकों के योगदान एवं संपादन मंडल के सहयोग के लिए हम आभारी हैं। आशा है स्वास्थ्य से संबंधित प्रकाशित सामग्री पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। इस संदर्भ में आपकी प्रतिक्रिया और परामर्श का हम स्वागत करेंगे।

प्रोफेसर यादे लाल टेखरे
प्रबंध सम्पादक

विषय सूची

आमुख
संपादकीय

क्रम	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ संख्या
1	बच्चों के जन्म में अंतर हेतु गर्भनिरोधक उपाय	अरविंद कुमार प्रोफेसर वी. के. तिवारी	1
2	स्वस्थ जीवन का अधिकार	डा. सरोज कुमार शुक्ल	5
3	सक्रिय व स्वस्थ वृद्धावस्था : एक वरदान	डा. सी. एम. एस. रावत डा. एस. के. झा	10
4	रक्ताल्पता एवं गर्भावस्था	रेखा मीणा	15
5	जन स्वास्थ्य में स्वच्छता का महत्व	अरविंद कुमार	24
6	वर्तमान जीवन पद्धति एवं स्वास्थ्य समस्याएँ	डा. राजीव कुमार रावत	28
7	सुरक्षित जीवन के पाँच मंत्र	डा. साधना अवस्थी	33
8	गृह स्वच्छता और जनस्वास्थ्य	डा. पूनम सिंह	35
9	बेटी की दशा	डा. साधना अवस्थी	40
10	बाल श्रम : सामाजिक सरोकार	ओम कुमार कर्ण	43
11	स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में चिंता का सकारात्मक स्वरूप	डा. रीता अवस्थी	46
12	सड़क दुर्घटनाएँ : समस्या और समाधान	डा. साधना अवस्थी	50
13	जनस्वास्थ्य पर मोबाइल फोन के उपयोग के प्रभाव	आशुतोष	56
14	मोबाइल फोन और हमारा स्वास्थ्य	डा. इन्दु ग्रेवाल कुमारी उर्वशी गुप्ता	60
15	कविताएँ		
	(अ) एड्स एवं संयमित जीवन	डा. एच. एस. विष्ट	64
	(ब) स्वास्थ्य सुरक्षा	नरेन्द्र विश्वकर्मा	65
	(स) मधुमास	संजीव भट्टाचार्या	66
	(द) नववर्ष	डा. अवंतिका	67

बच्चों के जन्म में अंतर हेतु गर्भनिरोधक उपाय

अरविन्द कुमार *
प्रोफेसर वी. के. तिवारी**

हमारा देश जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में चीन के पश्चात् दूसरा सबसे बड़ा देश है। इस समय हमारे देश की जनसंख्या डेढ़ अरब के समीप होने को है, किन्तु व्यापक स्तर पर अनेक उपाय करने के बावूजद भी जनसंख्या वृद्धि की गति को कम करने में कारगर सफलता नहीं मिली है। भारत के अनेक राज्यों में जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है, जिसकी वजह से उन राज्यों में किए जा रहे विकास कार्य तथा लोगों को प्रदान की जाने वाली सुविधाएँ, पर्याप्त सिद्ध नहीं हो पा रही हैं।

जनसंख्या वृद्धि की बेलगाम गति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा देश में परिवार नियोजन कार्यक्रम का वर्ष 1952 में सूत्रपात किया गया। इस कार्यक्रम के लाभों तथा छोटा परिवार रखने के प्रति सचेत करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से लोगों को शिक्षित किया गया तथा उन्हें स्वास्थ्य शिक्षा भी दिलाई गई। इस कार्यक्रम के अंतर्गत नव-दंपत्तियों को बच्चों के जन्म में अंतर रखने, लड़के-लड़कियों के विवाह की आयु क्रमशः 21 तथा 18 वर्ष करने, बच्चों की सही प्रकार से देखभाल करने, उत्तम पोषण, गर्भनिरोधक अपनाने के लिए स्त्री-पुरूषों विशेषतः नव-दम्पत्तियों को प्रोत्साहित करने जैसे पक्षों पर बल दिया गया।

नव दम्पत्तियों को स्वास्थ्य शिक्षा

भारत सरकार द्वारा परिवार नियोजन कार्यक्रम के अंतर्गत व्यापक रूप से जन-शिक्षा अभियान संचालित किया गया। इस अभियान के अंतर्गत सूचना, शिक्षा एवं संचार संबंधी विभिन्न माध्यमों द्वारा व्यापक स्तर पर पुरूषों एवं महिलाओं को इस बारे में शिक्षित किया गया कि कम आयु में विवाह होने के कारण लड़की जल्दी माँ बन जाती है। अल्पायु में गर्भधारण के समय लड़की का पूरा शारीरिक विकास नहीं हो पाता है फलस्वरूप उसका शिशु भी कमजोर तथा अविकसित जन्म लेता है। इस स्थिति का माता तथा शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। महिलाओं व पुरूषों को विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा जानकारी दी जा रही है कि लड़की 20-21 वर्ष की आयु से पहले माँ न बने, क्योंकि उसका शरीर इससे पहले पूर्ण विकसित नहीं होता है । इसके अतिरिक्त शीघ्र गर्भधारण करने के कारण महिला के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। उसके शिशु को भी पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता है, अतः यह आवश्यक है कि दो बच्चों के जन्म के बीच में तीन वर्ष का अंतर जरूर रखा जाना चाहिए। इसमें माँ का

* हिन्दी अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली
**विभागाध्यक्ष, योजना एवं मूल्यांकन विभाग तथा कार्यवाहक उप-निदेशक (प्रशा.), राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली

स्वास्थ्य भी ठीक बना रहेगा और आगे गर्भधारण एवं बच्चे को जन्म देने में शारीरिक कठिनाई का सामना नही करना पडेगा।

शिशु जन्म के बीच अंतर रखने के लिए गर्भ निरोधक उपाय

परिवार नियोजन कार्यक्रम के अंतर्गत बच्चों के जन्म में एक कारगर उपाय के रूप में गर्भ निरोधक उपाय अपनाने पर प्रचुर बल दिया गया। भारत सरकार द्वारा सभी राज्यों में स्वास्थ्य सुविधाओं, अस्पतालों, औषधालयों, प्राथमिक/सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर पुरूषों, महिलाओं तथा नवदम्पत्तियों को परिवार नियोजन संबंधी उपाय तथा गर्भनिरोधक उपाय अपनाने का निःशुल्क परामर्श एवं सेवायें प्रदान की जाती हैं ताकि वह अवांछित गर्भधारण की परेशानियों से बच सकें जिससे दम्पत्ति अपना स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके।

खाने की गर्भ निरोधक गोलियाँ

परिवार नियोजन उपाय/विधि के अंतर्गत चिकित्सकों द्वारा महिलाओं को एक सरल एवं सुरक्षित उपाय के रूप में गर्भनिरोधक गोलियाँ खाने का परामर्श दिया जाता है। महिलाओं को यह गोलियाँ अस्पताल के चिकित्सक अथवा स्वास्थ्य केन्द्र की ए.एन.एम. के परामर्श से मासिक चक्र के पाँचवे दिन से लेनी प्रारंभ करनी चाहिए। उन्हें गोली के पत्ते पर निर्देशानुसार प्रतिदिन एक गोली खाने का परामर्श दिया जाता है तथा स्वास्थ्य संबंधी कोई भी इतर प्रभाव का अनुभव होने पर चिकित्सक/ए.एन.एम. से संपर्क करने का निर्देश दिया जाता है। इन गोलियों को समय पर खाना बहुत आवश्यक होता है। गोली खाना भूल जाने पर अगले दिन दो गोली खानी होती है। इस विषय में स्थानीय स्तर पर परामर्श सेवायें पर्याप्त रूप से सुनिश्चित की गई है।

गर्भनिरोधक गोलियों के लाभ

- महिलाओं को बच्चेदानी व स्तन कैंसर, रक्ताल्पता, मासिकधर्म संबंधी समस्याओं आदि की संभावना घट जाती है।
- महिलाओं द्वारा अपने प्रथम गर्भ को अपनी इच्छानुसार रोका जा सकता है। इसके अतिरिक्त बच्चों के जन्म में अंतर उचित प्रकार से रखा जा सकता है।

सावधानियाँ

- गोली खाने का दिन तथा समय ध्यान रखना जरूरी है। नियम व निर्देशों का पालन पूरी तरह से किया जाना चाहिए।

- गर्भनिरोधक गोलियाँ खाने से महिलाओं को कभी-कभी कुछ इतर प्रभाव हो सकते हैं, जैसे - खून के धब्बे आना, शारीरिक वजन बढ़ना, सिरदर्द आदि। इनसे घबराने अथवा गोली खाना छोड़ना नहीं चाहिए, अपितु अस्पताल एवं स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।
- शिशु को स्तनपान कराने वाली महिलाओं को गर्भनिरोधक गोलियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्तनपान करना एक प्राकृतिक गर्भनिरोध माना गया है।

पुरूषों के लिए कंडोम

परिवार नियोजन विधियों के अंतर्गत पुरूषों के लिए कंडोम के प्रयोग को सरल तथा प्रभावकारी उपाय माना गया है। पुरूष द्वारा प्रत्येक सहवास में नया कंडोम प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि किसी भी प्रकार की असुरक्षा की संभावना न रहे। प्रायः चिकित्सकों/स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा पुरूषों को कंडोम का प्रयोग करने से पूर्व उसकी अंतिम तिथि की जाँच कर लेने की सलाह दी जाती है।

- कंडोम जहाँ अवांछित गर्भ को रोकने का एक प्रभावी माध्यम है, वहीं यह प्रयोक्ताओं का यौन रोगों तथा एड्स से बचाव भी करता है।
- कंडोम का प्रयोग करने से यौन-सुख में कोई कमी नहीं आती है तथा यह एक अत्यंत सुलभ साधन है।

प्रयोग संबंधी सावधानियाँ

कंडोम का उपयोग करने के पश्चात् इसे कागज में अच्छी तरह लपेटकर कूडेदान में या कचरे के लिए निर्धारित स्थान पर फेंक देना चाहिए। यदि किसी स्थिति में यह फट जाए तो चौबीस घंटे के भीतर ए.एन.एम./चिकित्सक से सलाह लेना आवश्यक है। ताकि अनचाहे गर्भ से मुक्ति पाई जा सके। इस दिशा में इमरजेंसी गर्भनिरोधक का प्रयोग वाँछित है।

कॉपर टी - 380 ए

कॉपर-टी प्रशिक्षित ए.एन.एम./चिकित्सक द्वारा सरकारी अस्पताल/प्राथमिक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर ही लगाई जाती है। यह सुविधा सभी स्वास्थ्य केन्द्रों पर निःशुल्क प्रदान की जाती है। कॉपर-टी की प्रभावकारिता अवधि दस वर्ष तक होती है तथा जब भी महिला गर्भधारण करने की इच्छुक हों तो इसे निकलवाकर गर्भधारण किया जा सकता है। शेष मासिक धर्म प्रारंभ होने के पाँचवे दिन या इसकी समाप्ति पर या प्रसव होने के छः सप्ताह के बाद चिकित्सक के परामर्शानुसार लगवाया जा सकता है। इसके कारण शिशु को स्तनपान कराने की प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

कॉपर-टी लगवाने के कारण किसी-किसी महिला को पेडू में दर्द होने अथवा माहवारी होने के समय अत्यधिक रक्तस्राव होने की समस्या उत्पन्न हो सकती है, जो स्वतः कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो जाती है। यदि लाभ न पहुँचे तो चिकित्सक से परामर्श अवश्य लेना चाहिए।

आत्म-संयम

यद्यपि पुरातन भारतीय परम्पराओं तथा मान्यताओं के अनुसार वंश वृद्धि के उद्देश्य हेतु अधिक संतान को उचित नहीं माना गया। ऋषि, मनीषियों द्वारा संतति नियंत्रण के लिए आत्मबल एवं संयम द्वारा स्वयं को स्त्री संसर्ग से दूर रखने को ही गर्भनिरोध का सर्वश्रेष्ठ उपाय अथवा विधि माना गया है। आत्म संयम द्वारा पुरूषों का स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित न करने की दिशा में अनेक सामाजिक मूल्य प्रचलन में हैं किन्तु यह दृढ़ इच्छा शक्ति तथा संयमित जीवन शैली पर निर्भर करता है। आज के युग में मान्यताएँ बदलीं हैं फिर भी आत्मसंयम का सकारात्मक प्रयोग कर हमारा समाज गर्भनिरोध की दिशा में लाभान्वित हो सकता है। आत्मसंयम की सार्थकता आज के भौतिकवादी समय में भी उतनी ही है, जितनी पहले थी, इसे बाध्यकारी न मानकर सहज रूप में ग्रहण करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में जनसंख्या वृद्धि की बेतहाशा तीव्र गति को नियंत्रित करने तथा इस पर अंकुश लगाने में परिवार नियोजन के उपायों के रूप में गर्भनिरोधक विधियों का उपयोग किस सीमा तक सफल हो पाया है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज के भौतिकवादी आधुनिक संदर्भ में, उपरोक्त गर्भ निरोधक विधियों के बारे में यही उल्लेख किया जा सकता है कि सरकारी प्रचार माध्यमों, स्वास्थ्य शिक्षा, जन-जागृति अभियान आदि के माध्यम से लोगों में छोटा परिवार संबंधी मानकों को अपनाने की दिशा में पुरजोर प्रयास किए जा रहे हैं, तथापि इस क्षेत्र में बहुत कुछ प्रयास करने शेष हैं। छोटे परिवार के विचार बहुतायत में लोग स्वीकार तो कर रहे हैं किन्तु अभी भी बहुत से ऐसे परिवार मिल जाएंगे जहाँ परामर्श की नितांत आवश्यकता है। वस्तुतः सुविधाओं के साथ-साथ समझ और सामुदायिक भागीदारी भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

संदर्भः

1. त्रैमासिक पत्रिका ''आशायें'', वर्ष-3, अंक-5 (जनवरी-मार्च, 2010)
2. इंटरनेट पर उपलब्ध सूचनाएं

स्वस्थ जीवन का अधिकार

डॉ0 सरोज कुमार शुक्ल*

अधिकारों का उपभोग करने के लिए व्यक्ति का शरीर और मन दोनों से स्वस्थ रहना आवश्यक है। सभी मानवीय व नैतिक कर्त्तव्यों के निर्वाह के लिए शरीर ही प्रथम साधन है। इसे और विस्तार दें तो कह सकते है कि अपने अधिकारों (मानवाधिकार सहित) के उपयोग तथा कर्त्तव्यों के अनुपालन के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। चूंकि मन और मस्तिष्क भी शरीर के ही अंग हैं इसलिए स्वास्थ्य की परिधि में स्वाभाविक रूप से उनका स्वास्थ्य भी शामिल है। स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर एक अनिवार्य शर्त है।

प्रायः यह पाया गया है कि अस्वस्थ होने का एक कारण व्यक्ति स्वयं हो सकता है। अधिकतर मामलों में व्यक्ति अपनी आदतों, प्रमाद या कुपथ्य आदि के कारण बीमार पड़ता है। स्वास्थ्य की रक्षा और बिगडे स्वास्थ्य के सुधार के लिए अस्पताल हैं। शहर हो या महानगर आज सरकारी अस्पतालों में व्याप्त लापरवाही, उपेक्षा, तिरस्कार, टाल–मटोल, निष्क्रियता, भाई–भतीजावाद (स्टाफवाद), भ्रष्टाचार आदि का बोलबाला सर्वविदित है। गाँवों में आज भी स्वास्थ्य सुविधाओं का नितांत अभाव है। नाम मात्र के कुछ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र बने हैं जिनका वर्णन करने से बेहतर मौन रहना ही है। जनता नीम हकीमों का शिकार बनती है। कुछ खुशकिस्मत मरीज दुर्गम रास्तों को तय कर शहरों के अस्पतालों के भेड़िया धसान का अंग बन जाते हैं अन्यथा अधिकांश गाँव में ही अकाल मृत्यु की भेंट चढ़ जाते हैं।

खाद्य पदार्थों में मिलावट, नकली दवाओं का कारोबार, आदि अनेक कारक हैं जो एक स्वस्थ समाज की अवधारणा को मुँह चिढ़ाते हैं। राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक कारणों और टूटते हुए जीवन मूल्यों के कारण बढ़ते तनाव मानसिक रोगों में वृद्धि कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि आधि–व्याधि से पूरा समाज जर्जर हुआ जा रहा है। पूरा देश त्राहिमाम की मुद्रा में है फिर भी हम इस मूलभूत मुद्दे पर लगभग मौन हैं। सच्चे लोकतंत्र में हर नागरिक को स्वस्थ रहने का अधिकार है तथा इसमें यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि 21 वीं सदी की तथाकथित उन्नत विश्व व्यवस्था में अकाल मृत्यु मानवाधिकार की चिंता का विषय बने।

सार्वभौमिक मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य को मनुष्य के अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके अनुच्छेद 25 में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि 'अपने और अपने परिवार की तंदुरूस्ती तथा स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त जीवन–स्तर जिसमें भोजन, वस्त्र–धारण, आवास, चिकित्सा सुविधा, बीमार और अशक्त होने पर सुरक्षा का अधिकार भी शामिल है, का अधिकार सभी को है।' इस दृष्टि से सर्वोत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करना व्यक्ति का मौलिक अधिकार है जिसका कार्यान्वयन केवल स्वास्थ्य–क्षेत्र पर ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक और कई अन्य क्षेत्रों पर भी निर्भर करता है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा का अनुच्छेद 12 भी प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोत्तम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का अधिकार देता है।

***सहायक निदेशक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, फरीदकोट हाऊस, कॉपरनिकस मार्ग, नई दिल्ली–11001**

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न मानवाधिकारों की स्वीकृति भारतीय संविधान में भी अंगीकृत है। स्वास्थ्य सहित अनेक सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को संविधान के चौथे अध्याय में राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों में शामिल किया गया है। हालांकि ये सिद्धांत, मौलिक अधिकारों की भांति बाध्यकारी नहीं हैं फिर भी अनुच्छेद 42 में निर्देश दिया गया है कि, राज्य काम की न्यायसंगत और मानवीय स्थितियां सुनिश्चित करने तथा मातृत्व राहत सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रावधान करेगा। अनुच्छेद 47 में भी कहा गया है कि राज्य अपने नागरिकों का जीवन–स्तर तथा पोषण स्तर ऊपर उठाने और जन–स्वास्थ्य को बेहतर बनाने को अपना प्राथमिक कर्तव्य मानेगा। विशेष रूप से यह चिकित्सकीय उपयोग को छोड़कर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नशीले पेय और दवाईयों के सेवन को रोकने का यत्न करेगा। इसके अलावा इन निर्देशक सिद्धांतों को अनुच्छेद 21 में वर्णित मौलिक अधिकार के साथ पढ़ा जाना चाहिए। इसमें स्वास्थ्य और स्वास्थ्य–रक्षा के अधिकार को भी शामिल किया गया है तथा उन्हें जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग माना गया है। इन संवैधानिक उपबंधों के साथ–साथ उच्चतम न्यायालय ने भी जन–स्वास्थ्य को लेकर कई महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं। इनमें शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि स्वास्थ्य व्यक्ति का मौलिक अधिकार है तथा संवैधानिक उपबंधों और न्यायालय के निर्णयों में स्वास्थ्य और चिकित्सा से जुड़ी सुविधाएं सभी नागरिकों को सुलभ कराई जाय।

उपर्युक्त संवैधानिक और न्यायिक निर्देशों के बावजूद वास्तविकता निराशाजनक है। इसका कारण यह है कि यह मुद्दा केवल आर्थिक संसाधनों की अपेक्षा स्वास्थ्य नीति और इसके कार्यान्वयन की नियत से अधिक जुड़ा हुआ है। पिछले छह दशकों में स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई प्रगति को संतोषजनक नहीं माना जा सकता है। स्वास्थ्य का अधिकार व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं से उद्भूत है लेकिन सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की भांति स्वास्थ्य के अधिकार पर भी गरीबी का ग्रहण लगा हुआ है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से शोषित लोगों की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच ही नहीं है। स्मरणीय है कि स्वास्थ्य सेवाओं का दायरा केवल डॉक्टरी चिकित्सा और अस्पताल तक सीमित नहीं है वरन उसमें पौष्टिक आहार, स्वच्छता, शुद्ध पेयजल की उपलब्धता, प्रदूषणमुक्त वातावरण तथा पर्यावरण आदि भी आते हैं। इन सबका पर्याप्त रूप में सुलभ न होना भी व्यक्ति के अधिकार का हनन है।

देश में अब भी कुपोषण, गंदगी, प्रदूषण का बोलबाला बना हुआ है। इसका सबसे अधिक प्रभाव दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और बच्चों पर पड़ता है। वे हाशिये पर हैं। दरअसल, स्वास्थ्य के अधिकार के हनन का प्रमुख कारण समाज में व्याप्त सामाजिक–आर्थिक विषमताएँ हैं। आज के उपभोक्तावादी समाज में ये विषमताएँ और तेजी से बढ़ रही हैं। जनसंख्या के अत्यधिक बोझ से भी स्वास्थ्य नीति के प्रभावी कार्यान्वयन पर बुरा असर पड़ता है।

स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी सुविधाएं अधिकांशतः शहरी क्षेत्रों और विशेषकर महानगरों में ही केंद्रित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की विषम और प्रतिकूल स्थिति इसी बात से सिद्ध होती है कि वहां अस्पतालों में बिस्तरों और डॉक्टरों का अनुपात शहरों की तुलना में क्रमशः 15 गुना और 6 गुना कम है। प्रतिव्यक्ति व्यय सात गुना कम है। राज्यों का व्यय भी बहुत कम है। भारत में जन–स्वास्थ्य के आधारभूत ढांचे की प्रमुख इकाई प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र हैं। हाल के एक सर्वेक्षण में पाया गया कि केवल 38 प्रतिशत प्राथमिक केंद्रों में ही आवश्यक कर्मचारी हैं और केवल 31 प्रतिशत केंद्रों में ही सभी जरूरी आपूर्तियाँ की जाती हैं। यह दुःख की बात है कि केवल तीन प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में ही 80 प्रतिशत आवश्यक सामग्री निवेश सुलभ है। शहर की गंदी बस्तियां भी बिगड़ती स्थिति को व्यक्त करती हैं।

अभी भी देश में स्वास्थ्य–सेवाओं में संसाधनों की कमी और उचित प्रबंधन के अभाव में स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं मिल सका है। यदि हम महिलाओं की स्थिति, बाल मृत्यु दर, कुपोषण, खून की कमी, पेयजल जैसे मानकों पर दृष्टि डालें तो हम अपने आपको विकसित देशों से ही नहीं बल्कि अनेक विकासशील देशों से भी पीछे खड़ा पाते हैं। भारत में प्रसव के दौरान मृत्युदर (एम.एम.आर.) 550–570 है अर्थात 37 में से एक महिला इस घातक दौर से गुजरती है। यह मृत्यु–दर चीन और श्रीलंका से भी 4–5 गुना अधिक है। भारत में जच्चा बच्चा स्थिति अच्छी कैसे हो सकती है जबकि एक–तिहाई से भी कम महिलाओं (31.8 प्रतिशत) को पूर्ण प्रसव–पूर्व देखभाल प्राप्त हो पाती है। इसी तरह ग्रामीण क्षेत्रों में भी एक–तिहाई महिलाओं (32.3 प्रतिशत) को ही सुरक्षित प्रसव की सुविधा मुहैया हो पाती है। गर्भावस्था के दौरान स्वास्थ्य और पोषण पर ध्यान न दिए जाने और पर्याप्त आपातिक प्रसूति सेवाएं न मिल पाने के कारण माताओं की जिंदगी पर मौत का खतरा मंडराता रहता है।

शहरी क्षेत्रों में निजी अस्पतालों की संख्या बढ़ी है लेकिन व्यावसायिकता की आंधी से ये अस्पताल भी अछूते नहीं हैं। इनका महंगा इलाज आम आदमी की पहुँच से बाहर है। विवश होकर लोगों को झोला छाप डॉक्टरों की शरण में जाना पड़ता है। पैसे के लालच में ये अस्पताल गर्भवती महिलाओं के शरीर से खिलवाड़ करते हैं तथा सामान्य प्रसव के स्थान पर अनावश्यक रूप से ऑपरेशन के जरिए प्रसव को तरजीह देते हैं। गर्भावस्था के दौरान जांच के लिए जो नई वैज्ञानिक तकनीकें सामने आई हैं उनका जमकर दुरुपयोग हो रहा है। तमाम कानूनी प्रतिबंधों के बावजूद इस बात की धड़ल्ले से जांच की जा रही है कि गर्भ में लड़का है या लड़की। लड़के की चाह रखने वाले हमारे समाज में इसकी परिणति बालिका भ्रूण–हत्या के रूप में होती है।

मादा भ्रूण के लिए माँ की कोख ही कब्रगाह बन जाती है। मादा भ्रूण–हत्या के कारण स्त्री–पुरूष अनुपात में असंतुलन आ रहा है जो हमारे लिए भयानक खतरे की घंटी है। भारत में शिशु मृत्यु दर भी गंभीर चिंता का विषय है जो कि औसतन 1000 जन्मे बच्चों में से 72 हैं। महिलाओं और बच्चों से जुड़ी यह स्थिति अपने भीतर सामाजिक और आर्थिक विनाश का बीज लिए हुए है। हमारा समाज जीवन की स्वतंत्रता, समानता और स्वास्थ्य जैसे मानवाधिकार सभी महिलाओं और बच्चों को सुलभ कराए जाने में विफल रहा है।

आज भी यदा–कदा भुखमरी से मौतें होने की खबरें आती रहती हैं। देश में पांच वर्ष से कम आयु के 50 प्रतिशत बच्चे (लगभग 6 करोड़) कुपोषण के शिकार हैं। यहाँ कुपोषण के फलस्वरूप समय से पहले अशक्त बच्चों का जन्म या कम वज़न के बच्चों का जन्म भी आम बात है। भारत में इसका प्रतिशत 33 है जबकि यह दक्षिण कोरिया और चीन में 9, थाईलैण्ड में 6 और इंडोनेशिया में 8 है। उचित पोषण और टीकाकरण के अभाव में बड़ी तादाद में बच्चे ऐसी बीमारियों से मर जाते हैं जिनकी रोकथाम की जा सकती है। कुपोषण एक विकराल समस्या है और बच्चे, गर्भवती महिलाएं, वृद्ध व्यक्ति, कमजोर वर्ग के लोग इससे ग्रस्त हैं। निम्न जीवन–स्तर के एक से पांच वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु दर उच्च जीवन स्तर वाले बच्चों से 3.9 गुना ज्यादा है। संतुलित भोजन मानव की प्राकृतिक आवश्यकता है और इस अधिकार की रक्षा के लिए न केवल दवा की अपितु पर्याप्त, पौष्टिक और संतुलित भोजन की जरूरत है। महिलाओं में खून की कमी और बच्चों में कुपोषण को दूर किए बिना हम अपनी भावी पीढ़ी को स्वस्थ नहीं बना सकते। देश के जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य की दृष्टि से मानवाधिकार हनन की स्थिति अत्यंत भयावह है। वहां लोग कुपोषण के साथ–साथ कई तरह की महामारियों के भी शिकार होते रहते हैं।

यहां यह सीधा सवाल खड़ा होता है कि क्या हम बीमार, कमजोर और अशक्त आबादी को लेकर विकसित देशों की श्रेणी में खड़े हो सकते हैं? स्वास्थ्य का अधिकार, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की परिधि में आता है। देश में केवल नागरिक या राजनीतिक अधिकारों पर ही नहीं बल्कि आर्थिक और सामाजिक अधिकारों पर भी ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। गरीबी में जीवन–यापन करना और स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित होना मानवाधिकार का सबसे गंभीर उल्लंघन है। अतः हमें इस दिशा में ध्यान देना होगा और प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए कारगर उपाय करने होंगें। इसके लिए बेतहाशा बढ़ रही आबादी पर अंकुश लगाने हेतु परिवार–नियोजन कार्यक्रमों को गति प्रदान करने के लिए जन–जागरूकता तथा सभी नागरिकों को स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार जैसी जरूरतों के आपसी रिश्ते से परिचय कराने की आवश्यकता है। यह जन–जागरूकता आंदोलन शहरी, ग्रामीण, जनजातीय क्षेत्रों के साथ–साथ महिलाओं, दलितों, जनजातीय लोगों, अल्पसंख्यकों आदि की आवश्यकताओं और सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर चलाया जाना चाहिए। इसमें स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं या रूपों की भी जानकारी दी जानी चाहिए। जन स्वास्थ्य सेवा का अधिकार आपातकालीन चिकित्सा सेवा का अधिकार, उचित मूल्य पर आवश्यक दवाएं प्राप्त होने का अधिकार, बीमारी निवारण ज्ञान का अधिकार, अधिनियमों के प्रावधानों के कार्यान्वयन में होने वाली कमी को दूर करने के लिए जवाबदेही ठहराना, एच.आई.वी.एड्स रोगियों तथा वरिष्ठ नागरिकों के स्वास्थ्य का अधिकार आदि को इसके अंतर्गत शामिल किया जाना चाहिए।

एक अन्य बड़ी समस्या यह है कि निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएं देने वाले सरकारी अस्पतालों की संख्या बहुत सीमित है, साथ ही ये घूसखोरी, भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता के भी शिकार हैं। निजी अस्पताल धन उगाही और मुनाफाखोरी का जरिया बन चुके हैं। ये दोनों ही स्थितियां आम आदमी को उसके स्वास्थ्य के अधिकार से वंचित करती हैं। अतः स्वास्थ्य के क्षेत्र में सरकारी निवेश बढ़ाया जाना चाहिए तथा घूसखोरी और भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए सख्त कदम उठाए जाने चाहिए। निजी अस्पतालों की बढ़ती संख्या का तब तक कोई विशेष लाभ नहीं है जब तक वे आम आदमी को जरूरी चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करने के अपनी जिम्मेदारी को नहीं निभाते। इसके लिए स्वस्थ सोच के साथ–साथ कड़ी निगरानी प्रणाली की भी जरूरत है। महिलाओं के सुरक्षित प्रसव, शिशुओं से लेकर वृद्धों तक सभी के इलाज का मुद्दा अस्पतालों की संख्या के साथ उनकी कार्यकुशलता से भी जुड़ा है।

स्वास्थ्य क्षेत्र की अक्षमता तब और भयावह एवं वीभत्स हो जाती है जब जीवन की रक्षा करने वाली दवाएं ही उन्हें काल का ग्रास बनाने लगती हैं। नकली दवाओं का कारोबार हमारे नियम–कानूनों के लिहाज से और मानवता की दृष्टि से घिनौना अपराध है। शहरों और गांवों में फलफूल रहे इस जघन्य अपराध पर अविलंब काबू पाने की जरूरत है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वतंत्रता के तत्काल बाद देश में केंद्र और राज्यों की सरकारों ने स्वास्थ्य और शिक्षा को मानवीय विकास का आधार मानते हुए कई दीर्घकालिक योजनाएं और कार्यक्रमों का सूत्रपात किया। इसमें प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और प्रसूति गृह खोला जाना, जन्म के बाद बच्चों को जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए निःशुल्क टीकाकरण, पल्स पोलियो अभियान आदि शामिल हैं। इसके अलावा देश में बड़े पैमाने पर सरकारी और निजी अस्पताल खोले गए हैं जिनमें साध्य–असाध्य रोगों के उपचार के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी लगाई गई है। सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का लगभग 69 प्रतिशत राशि स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र पर ही खर्च हो रहा है। संसाधनों और स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

अस्पतालों की संख्या वर्ष 1991 में 11,174 (57 प्रतिशत निजी) से बढ़कर वर्ष 2000 में 18,218 (75 प्रतिशत निजी) हो गई। वर्ष 2000 में देश 12.5 लाख डॉक्टर और आठ लाख नर्से थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक 1800 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर उपलब्ध था। यदि आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक और अन्य चिकित्सा–पद्धतियों को भी शामिल किया जाए तो प्रत्येक 800 व्यक्तियों पर एक डॉक्टर उपलब्ध होता है। इसके अलावा हर वर्ष 15,000 स्नातक डॉक्टर और 5,000 स्नातकोत्तर डॉक्टर प्रशिक्षित होकर निकलते हैं।

कुपोषण की त्रासदी से निपटने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों, आदिवासी क्षेत्रों और शहर की गंदी बस्तियों को मुख्य रूप से ध्यान में रखते हुए व्यापक स्तर पर प्रभावी कदम उठाने होंगे तथा पौष्टिक एवं संतुलित भोजन के बारे में जानकारी देनी होगी। यदि हम गर्भवती महिलाओं की समुचित देखभाल, दो बच्चों के बीच उचित अंतराल, नवजात शिशुओं को स्तनपान और संक्रामक एवं घातक बीमारियों पर नियंत्रण के कार्यक्रम को सही ढंग से साकार कर सकें तो कुपोषण की समस्या पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है। इस दृष्टि से भारत में टीकाकरण कार्यक्रम और पल्स पोलियो अभियान काफी सफल रहा है। इसी तरह शारीरिक दृष्टि से अपंग और मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त एवं निःशक्त लोगों के लिए भी व्यापक कार्यक्रमों की जरूरत है। उनके लिए स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाएं उनकी रोजमर्रा की कठिनाईयों को ध्यान में रखकर उपलब्ध कराई जानीं चाहिए।

इसके अलावा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को नगरों, गांवों, जनजातीय, पिछड़े और पर्वतीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य की मजबूत इकाई बनाना होगा तथा इनमें चिकित्सा की सभी जरूरी सुविधाएं मुहैया करानी होंगी। दूर–दराज के इलाकों में चलते–फिरते अस्पतालों की बड़े पैमाने पर व्यवस्था आवश्यक है। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की स्वास्थ्य बीमा योजना को कारगर ढंग से लागू करना होगा। स्वास्थ्य के अधिकार को देश के कोने–कोने में सुनिश्चित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को अधिक से अधिक संख्या में भागीदार बनाया जाना चाहिए क्योंकि स्वैच्छिक प्रयासों की शक्ति और उपयोगिता सर्वविदित और स्वयंसिद्ध है। इस बात पर भी विचार करना होगा कि क्या देश में चिकित्सा पद्धतियों, निजी एवं जन स्वास्थ्य संस्थाओं के बीच ने. टवर्क स्थापित किया जा सकता है अथवा नहीं। इकाई रूप से प्रारंभ इन सुधारों को निजी संस्थाओं और सरकार की विभिन्न नीतियों के सहयोग से ही तीव्र किया जा सकता है। ये प्रयास राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन आदि योजनाओं में स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सभ्य समाज में स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार ऐसी अनिवार्य परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्य के अस्तित्व के लिए सवो. र्परि हैं। तत्पश्चात् ही हम भारतीय संस्कृति के आधार वाक्य **"सर्वे सन्तु निरामया"** को प्राप्त कर पाएंगे।

संदर्भः

1. योजना आयोग द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका – योजना अक्टूबर, 2009
2. संस्कृति मंत्रालय द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका – संस्कृति
3. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट
4. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट
5. खाद्य एवं आपूर्ति मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट

सक्रिय व स्वस्थ वृद्धावस्था : एक वरदान

डा0 सी0एम0एस0 रावत*

डा0 एस0के0 झा**

विश्व में तेजी से बढ़ती हुई वृद्धों की संख्या इक्कीसवीं सदी में एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में उभर कर आ रही है। एक अनुमान के अनुसार भारत में वृद्धावस्था की आबादी जिस गति से बढ़ रही है, उसमें हमारे वृद्धों (60 साल से ऊपर के आयु वाले) की आबादी 2025 तक कुल आबादी का 11.85 प्रतिशत हो जायेगी। यह एक सामान्य कहावत है कि विकसित देशों में बुजुर्ग ज्यादा हैं जबकि ऐसा नहीं है। 60 प्रतिशत से ऊपर बुजर्ग विकासशील देशों में हैं, जो कि आने वाले 15–20 सालों में 70 प्रतिशत से ऊपर हो जाएंगें। इसका सीधा सा अर्थ हुआ कि असंक्रामक रोगों जैसे डायबिटीज, कार्डियोवैस्कुलर डिजीज व कैन्सर जैसी चुनौतियां ज्यादा होगीं एवं तीन चौथाई मृत्यु का यह कारण होगा। यदि वृद्धावस्था सक्रिय व स्वस्थ रहेगी तो हम इस चुनौती का सामना कर सकते हैं व स्वस्थ समाज की आधारशिला रख सकते हैं। इस हेतु हमें देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार वृद्धावस्था को वरदान मानते हुए स्वास्थ्य एवं मनो–सामाजिक दृष्टि से सकारात्मक व्यवहार की ओर कदम बढ़ाने होंगें। इसके लिए वृद्धजनों को पूर्णरूप से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक रूप से मजबूत कर उनके अनुभव व ज्ञान से एक स्वस्थ और सफल समाज बनाए रखने में मार्गदर्शन लेना चाहिए। यह प्रयास प्रत्येक व्यक्ति, घर, समाज से शुरू होगा। शुरूआत युवा पीढ़ी करेगी जो कि बुजुर्गो को नमन कर उनकी सेवा में ईश्वर की सेवा समझेगी। जीवन–पर्यन्त अर्जित ज्ञान व अनुभव से भरपूर बुजुर्ग अपने परिवार तथा समुदाय के लिए बहुत बड़ी निधि हैं, बशर्ते उनकी क्रियात्मक क्षमता अधिकतम समय तक बढ़ाई जा सके।

हॉ, यह सच है कि किसी दिन जीने पर चढ़ते हुए दम घुटने लगता है, तो कभी शीशे पर अपना मुखमण्डल पूर्वतः चमकता नहीं दिखता। कहीं कोई झुर्री नजर आती है तो धीरे–धीरे ढलती आयु का भी आभास होता है। जिसका कोई भी स्वागत नहीं करना चाहता, पर वह सबको अपना बन्दी बना लेता है। समय की गति रोकी नहीं जा सकती। निस्संदेह बुढापा एक हकीकत है, मगर स्वयं को दीर्घ काल तक चुस्त–दुरूस्त रखा जा सकता है।

चिकित्सा विज्ञान में तीव्र प्रगति के परिणाम स्वरूप मानव की जीवन–अवधि भारत में बीसवीं सदी के प्रारम्भ में औसतन केवल तीस वर्ष थी, जबकि इक्कीसवीं सदी की शुरूआत में यह लगभग सत्तर वर्ष के आस–पास पहुॅचने वाली है। इनकी जीवन अवधि तथा संख्या बढ़ने का प्रभाव तभी देश व संसार के लिए हितकर होगा, जब वे क्रियाशील भी रह सकें, अन्यथा तमाम विकारों से युक्त बुढ़ापा कांपते हाथ, लड़खड़ाते पैर, कमजोर आंखें, बहरे कान व टूटे दांत अथवा पूर्ण रूपेण निर्बल वृद्ध अपने और समाज के लिए भार स्वरूप बन जाता है। अब देखें कि विश्व की इतनी विशाल जनसंख्या वाले भारतवर्ष में विशेष रूप से वृद्धावस्था को सक्रिय बनाने की दिशा में कौन सीं प्रमुख समस्याएं हैं और उनके समाधान क्या हैं?

---

*प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, सामुदायिक चिकित्सा विभाग, राजकीय मेडिकल कालेज, हल्द्वानी, (नैनीताल) उत्तराखण्ड

**सहायक प्रोफेसर, सामुदायिक चिकित्सा विभाग, राजकीय मेडिकल कालेज, हल्द्वानी (नैनीताल), उत्तराखण्ड

वस्तुतः वृद्धावस्था में शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक रूप से भी अशक्त हो जाने से व्यक्ति संताप, तनाव, अवसाद और एकाकीपन के शिकार हो जाते हैं। जबकि वृद्धावस्था में सक्रिय बने रहने के लिए तन के साथ–साथ मन का भी स्वस्थ रहना एक अनिवार्य आवश्यकता है। चिकित्सकीय सहायता मिलने के बावजूद समाज का क्रियाशील अंग बने रहने के लिए वृद्ध लोगों की तरफ से भी दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है। इस हेतु स्वास्थ्य के लिए सतर्कता तथा आत्मनिर्भरता एक बड़ी कुन्जी है। भारत जैसे विकासशील देशों में आज भी दादा–दादी या नाना–नानी का परिवार में महत्वपूर्ण स्थान है। छोटे बच्चों के पालन–पोषण, शिक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रदान करने से लेकर बड़ी–बड़ी समस्याओं के निदान हेतु दीर्घ जीवन का अनुभव होने के कारण उनका परामर्श अथवा सुझाव महत्वपूर्ण होते हैं। फलतः वे शारीरिक और मानसिक रूप से क्रियाशील रह पाते हैं। साधारणतया मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से नगर एवं ग्रामवासियों की लगभग समान समस्या बनती हैं। जैसे–जैसे व्यक्ति उम्र में बढ़ता जाता है उसके जीवन में प्रौढ़ावस्था के बाद वृद्धावस्था का आगमन भी होने लगता है। दरअसल उम्र का बढ़ते जाना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। प्रश्न उठता है कि हम कैसे योजनाबद्ध तरीके से वृद्धावस्था के आगमन ही नहीं उसे आत्मसात करने के लिए तैयार रहें।

ऐसे लोग हमारे समाज में बहुत कम होते है जो आयु से तो सत्तर– अस्सी वर्ष के होते हैं, लेकिन चुस्ती अथवा फुर्ती में वे युवाओं को भी मात देते हैं अर्थात् दिमागी तौर पर असाधारण रूप से सजग तथा सृजनात्मक बने रहते हैं। आखिर इसका रहस्य क्या है यह मान कर चलें कि उनकी जीवनशैली आम लोगों से भिन्न होती है। सर्वविदित है कि जापानी लोग आखिरी दम तक काम करते पाये गये हैं। अब दुनिया के कुछ अन्य विकसित देशो में भी ऐसी मान्यता बढ़ती जा रही है कि बुजुर्गों को समाज के हितार्थ इस योग्य बनाया जाय कि वे जब तक चाहें वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप से कार्य कर सकें। वस्तुतः एक नयी सोच और सामर्थ्य जुटाने की आवश्यकता है। नौकरीपेशे वाले व्यक्ति को सेवानिवृत होते ही एक नया बहीखाता खोल लेना चाहिए, जिसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा जाय– **1. आत्म विश्वास 2. आत्म निर्भरता 3. आत्म संयम 4. आत्म ज्ञान 5. आत्म त्याग।** इन्हीं बिन्दुओं के दिशा–निर्देशन में दैनिक लेखा–जोखा रखते हुए कदम बढ़ाने का प्रयास किया जाय, ताकि जीवन पर्यन्त क्रियाशीलता बनी रहे। भारतीय ज्ञान–गरिमा के गौरव स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि 'मानव मात्र की सेवा करना एक बड़ा सौभाग्य है' वस्तुतः दूसरों के दुःख–दर्द को अपना समझ कर सेवा करने वाले को भारी आत्मसंतोष की प्राप्ति होती है।

कोई बचपन में वृद्ध हो जाता है, कोई अपने यौवन में और कोई वृद्धावस्था में ही वृद्ध होता है, यदि मन ने मंजूरी नहीं दी तो बुढ़ापा कभी नहीं आता। शाश्वत सत्य है कि वृद्ध तो होना ही पड़ेगा। गौतम बुद्ध, मह. ावीर स्वामी, सुकरात, ईसा मसीह, मोहम्मद साहब, गुरू नानक और संत कबीर आदि महान विभूतियां, सभी तो वृद्ध हो गये थे। जब वे वृद्धावस्था के बन्धन से विमुक्त हुए तो अमर भी हो गये। सच कहा जाय तो वास्तविक वृद्धावस्था तो प्रयास अथवा परिश्रम करके लानी पड़ती है और बनावटी वृद्धावस्था बिना आमंत्रित किये आती है। अतः विद्वता और धर्म का समन्वय ही वास्तविक वृद्धावस्था है। जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण ही व्यक्ति को सक्रिय बनाये रखता है। देखा गया है कि वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, समाज सेवी इत्यादि वृद्धावस्था में अधिक कुशल और परिपक्व होते हैं, दरअसल वृद्धावस्था अनुभवों और निपुणताओं का पुँज है। आधुनिक युग में हमारे देश के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक सी0वी0 रमण, कविवर रवीन्द्र नाथ टैगोर, शान्ति दूत मदर टेरेसा, सामयिक अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन, लेखक एवं राजनीतिज्ञ पूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, जर्नल करिअप्पा, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी आदि देश–विदेश की महान विभूतियां हैं, जिन्होंने दीर्घ जीवन प्राप्त कर अपने कार्यक्षेत्रों को गौरवान्वित किया है। कमोवेश उनके जीवन में

सक्रियता निरंतर बनी रही, जिससे वे 'स्वस्थ वृद्धावस्था' में जिए और उसी अवस्था में उनका अंतिम समय बीता।

निस्संदेह जीवन के प्रत्येक स्तर पर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा भावनात्मक क्रियाशीलता बनाये रखने और बीमारियों के प्रति सावधान रहते हुए, ढ़लती उम्र में भी सक्रियता बरतते हुए समाज के प्रति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर, मानव जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है। अतः हर इन्सान का प्रथम प्रयास तो यही होना चाहिए कि प्रकृति ने जो यह शरीर रूपी मशीन उसे सुपुर्द की है, उसमें कोई खराबी पैदा होने का मौका ही न दिया जाय। किसी भी तरह के नशीले पदार्थों से परहेज करते हुए संतुलित, सुपाच्य आहार व समुचित व्यायाम एवं टहलने के बल पर उसे ठीक रखा जाय तथा यदि कोई विकार उत्पन्न होता है तो उसके प्रति लापरवाही कदापि न बरती जाय बल्कि समुचित पथ्य–अपथ्य का पालन करते हुए प्रसन्नचित्त जीवनशैली अपनायी जाय।

देखा गया है कि सेवा से अवकाश पाते समय व्यक्ति अपनी योग्यता के चरम शिखर पर होता है। इस काल में जब वह सेवा से मुक्त होता है तब उसकी योग्यता का प्रदर्शन करने वाला मंच उससे छूट जाता है, किन्तु सेवानिवृत्ति के पश्चात व्यक्ति को एक ऐसा मंच पुनः वापस मिलता है, जिस पर वह जीवनभर अपनी व्यस्तताओं के चलते, ठीक प्रकार से भूमिका संपन्न नही कर पाया था, जी हाँ, वह पुराना मंच है उसका घर। सेवानिवृत्ति के पश्चात तो व्यक्ति की भूमिका और अधिक उत्तरदायी और आनंददायी हो जाती है, क्योकि इस आयु तक व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक रूप से सम्पन्न और सुखी–समृद्ध हो चुका होता है। हाँ, एक शारीरिक दुर्बलता ही ऐसा विषय है, जिसकी समुचित परिचर्या द्वारा स्वास्थ्य को लम्बे समय तक चुस्त–दुरूस्त रखा जा सकता है। अतः इन सब बातों के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट होता है कि बुजुर्गों के प्रति न सिर्फ सामाजिक दृष्टिकोण बदलने की बल्कि उनकी शक्ति से लाभान्वित होने के अवसर पैदा करने की बड़ी आवश्यकता है। वस्तुतः इस वय–वर्ग की समस्याओं का गहन अध्ययन व विश्लेषण कर उसको उपयोग में लाने की जरूरत है।

वृद्धावस्था से सम्बन्धित बीमारियॉ

वैसे तो वृद्धावस्था में वे सभी बीमारियॉ होती हैं जो युवावस्था में भी होती हैं, परन्तु कुछ बीमारियॉ ऐसी भी होती हैं जो कि मुख्यतया वृद्धावस्था में ही होती हैं। वृद्धावस्था में प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ना आम बात है। यह शल्य चिकित्सा के द्वारा ठीक हो जाती है। औरतों में बच्चेदानी का बाहर आना (यूट्राइन प्रोलैप्स) एक सामान्य बीमारी है। जिसका मुख्य कारण उचित तरीके से डिलीवरी का न होना और डिलीवरी के बाद औरतों को समुचित आराम न मिलना है। इस बीमारी को ऑपरेशन करके बिल्कुल ठीक किया जा सकता है। वृद्धावस्था में हड्डियॉ कमजोर हो जाती हैं (आस्टियोपोरोसिस)। इसका सही समय से उपचार करने एवं कैल्शियम लेने से यह ठीक हो जाता है।

वृद्धावस्था में मोतियाबिन्द एक सामान्य समस्या है जो कि ऑपरेशन के द्वारा बिल्कुल ठीक किया जा सकता है। इसके अलावा वृद्धावस्था में एथिरोइसक्लोरोसिस, कार्डियोवैस्कूलर बीमारियां, डायबिटीज, उच्च रक्तचाप, मोटापा, श्वांस सम्बन्धी बीमारियां (ब्रौकाइटिस, अस्थमा आदि), न्यूरोडिजनेरेटिव डिसऑर्डर होती हैं। इसके अलावा महिलाओं में कुछ अन्य जैसे वलवल डिसट्रॉफी, सरवाइकल वैजीनाइटिस, यूरीनरी स्ट्रैस

इनकान्टिनैन्स, मूत्रनली का संक्रमण इत्यादि समस्याएं उत्पन्न हो सकतीं हैं। इसके अलावा वृद्धावस्था में किसी भी अंग में कैंसर होना सामान्य बात है।

वृद्धावस्था और व्यायाम

वृद्धावस्था जीवन की एक प्राकृतिक अवस्था है। हम सब जीवन के प्रत्येक क्षण वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हैं अतः हमें अपनी इस अवस्था को स्वस्थ एवं सक्रिय बनाये रखने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। वृद्धावस्था में शरीर कमजोर होने के साथ–साथ बीमारियों से लडने की क्षमता भी कम हो जाती है तथा जीवन एकाकी भी लगने लगता है। नियमित व्यायाम से हर उम्र के लोगों को लाभ पहुँचता है। जो लोग 60 वर्ष या उससे अधिक आयु में नियमित व्यायाम करते हैं, वे अन्य लोगों की तुलना में अधिक स्वस्थ एवं सक्रिय रहते हैं। नियमित व्यायाम से वृद्धावस्था की प्रकिया को कम किया जा सकता है।

एरोबिक व्यायाम से शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह से लाभ मिलता है, क्योंकि इसमें शरीर की समस्त मांसपेशियॉ इस्तेमाल होती हैं। नियमित रूप से 20 मिनट या उससे अधिक व्यायाम करने से हृदय की धडकन एक निश्चित स्तर तक पहुँचती है तथा नियमित रहती है। एक सप्ताह में 3–4 एरोबिक व्यायाम सत्र वृद्धावस्था में लाभदायक होते हैं। जिसमें प्रातः अथवा सायंकालीन लगभग 2 किमी0 का तेज भ्रमण, जॉगिंग मुख्य है। इसके अतिरिक्त सुविधानुसार रस्सी कूद, साईकिलिंग, नौकायन, गेंदबाजी, टेनिस, गोल्फ, बैडमिन्टन जैसे खेलों से भी लाभ होता है ।

एरोबिक व्यायाम के लाभ

1. **व्यायाम एवं रूधिर परिसंचरण तंत्रः** –वृद्धावस्था में रूधिर परिसंचरण में होने वाली परेशानियों के खतरे ज्यादा होते हैं। व्यायाम द्वारा शरीर में खून का बहाव तेज होता है। शरीर में रूधिर कणिकाओं का परिसंचरण अधिक होने से शरीर की समस्त कोशिकाओं को अधिक ऑक्सीजन तथा पोषण मिलता है। शरीर में एन्जाइम, हारमोन व अन्य आवश्यक पदार्थों का संचरण कोशिकाओं में बढ़ता है। रक्त में हाई–डेन्सटी लाईपोप्रोटीन का स्तर बढ़ता है जो रक्त वाहनियों (धमनियों) को सख्त होने से बचाती है, तथा जिससे हृदयाघात (हार्ट अटैक), स्ट्रोक्स तथा क्रोनिक किडनी फेलियर के खतरों को कम किया जा सकता है।

2. **व्यायाम एवं श्वसन तंत्रः** व्यायाम से फेफडों की कार्य क्षमता बढ़ती है। साथ ही श्वसन तंत्र से संबधित बीमारियों जैसे क्रोनिक ब्रॉनकाईटिस, इमफाई सीमा तथा अस्थमा आदि जैसी बीमारियों से लडने की क्षमता बढ़ती है।

3. **व्यायाम एवं पेशीय तंत्रः** नियमित व्यायाम से शरीर की बनावट एवं आकार सुन्दर व आकर्षक होते हैं। पेशियां मजबूत होती हैं व हड्डियों के कमजोर होने (ओस्टियोपोरोसिस) से बचाव होता है।

4. **व्यायाम एवं दिमागः** यादाश्त कम होना वृद्धावस्था का मुख्य लक्षण है। व्यायाम करने से दिमाग में खून का बहाव ठीक होता है। इससे दिमाग की कोशिकाओं को शुद्ध आक्सीजन एवं पोषण (ग्लूकोज़) मिलता है,

जिससे यादाश्त बढ़ती है। इसके अलावा दिमाग में उत्पन्न होने वाले रासायनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में बनते हैं तथा मनुष्य अपने आप को चुस्त एवं तरोताजा महसूस करता है।

5. **व्यायाम एवं मधुमेहः** मधुमेह (डायबिटीज) बीमारी, जो कि इन्सुलिन हार्मोन की कमी से होती है तथा जिसमें खून में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है। यह उम्र के बढ़ने के साथ–साथ बढ़ती है। यदि इसे बढ़ने से रोका न जाए तो इसके काफी गम्भीर परिणाम सामने आते हैं। व्यायाम करने से भूख नियंत्रित होती है, शरीर में एकत्र ग्लूकोज खर्च होता है परिणामस्वरूप खून में ग्लूकोज का स्तर सामान्य (नियन्त्रित) रहता है।

6. **व्यायाम एवं सामाजिक जीवनः** जो लोग नियमित रूप से व्यायाम करते है, वे अन्य लोगों की तुलना में अधिक स्वस्थ, आत्मविश्वासी तथा दृढ़ इच्छा शक्ति वाले होते हैं। सामान्यतः उन्हे गुस्सा बहुत कम या फिर नही आता है तथा हमेशा प्रसन्न रहते हैं और सामाजिक कार्यो में रूचि लेते हैं। वे सहज रूप में छोटे अथवा बडे हर उम्र के लोगों के साथ घुलमिल जाते हैं तथा अपनी एक अलग छवि बनाते हुए स्वस्थ रहते हैं। वे यह भी चरितार्थ करते हैं कि एक स्वच्छ मन एक स्वस्थ शरीर में निवास करता है।

7. **वृद्धावस्था एवं खान–पानः** इस हेतु कोई विशेष नियम नहीं है पर इतना जरूर है कि इस अवस्था में कार्बोहाइड्रेट व वसा की आवश्यकता कम होती है तथा प्रोटीन, विटामिन एवं मिनरल (तत्वों) की मात्रा आवश्यक रूप से सामान्य होनी नितान्त आवश्यक है। इस हेतु भोजन में सब्जी, फल व रेशेदार खाद्य पदार्थ अवश्य होने चाहिए। साथ में शाकाहारी भोजन ज्यादा लाभकारी है। पानी अधिक मात्रा में लेना जरूरी है तथा चाय, कॉफी आदि सामान्य से ज्यादा न लें ।

अन्त में यह कहना न्यायोचित होगा कि वृद्धावस्था एक निश्चित् पडाव है। हम इसे रोक तो नहीं सकते परन्तु स्वस्थ युग की ओर सक्रिय कदम जरूर रख सकते हैं। वृद्धावस्था में सबसे ज्यादा जरूरत पारिवारिक सदस्यों के प्यार की होती है जिससे उनके अन्दर प्रतिरोधक क्षमता निश्चित रूप से बढ़ती है। इसलिए वृद्ध मरीज को प्यार, सम्मान व इज्जत मिलनी चाहिए। इसके लिए हम सबको मिलकर उपर्युक्त समस्त बातों पर व्यवस्थित तरीके से ध्यान देना होगा। यह निश्चित समझिए कि वृद्धजन स्वस्थ एवं सक्रिय रहेगें, तो परिवार, समाज, देश व दुनिया स्वस्थ एवं सम्पन्न रहेगें। ज्ञातव्य रहे कि यूनाईटेड नेशन द्वारा पूरे विश्व में वर्ष 1999 को अन्तर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष के रूप में मनाया गया एवं वृद्धजनों की पूर्ण रक्षा हेतु संकल्प लिया गया ।

संदर्भः

1. वृद्धावस्था : मिथक, वृद्धावस्था और स्वास्थ्य कार्यक्रम, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा 1999
2. वृद्धावस्था में स्वतंत्रता हेतु एक जीवन पाठ्यक्रम, इंका मोरीट्ज और क्लाउडिया, विश्व स्वास्थ्य संगठन, जेनेवा 1999
3. हेल्थ एक्शन, एल्डरकेयर, फरवरी 2002, अंक 17(2)
4. स्वस्थ वृद्धावस्था को बनाए रखने के व्यावहारिक बिन्दु, वेस्टर्न पैसेफिक रीजन, विश्व स्वास्थ्य संगठन 2005,
5. एस आर एस सांख्यिकी रिपोर्ट 2003, भारत सरकार

रक्ताल्पता एवं गर्भावस्था

रेखा मीणा*

रक्ताल्पता अर्थात अनीमिया - विश्व की सर्वाधिक प्रचलित पोषण संबंधित समस्या है। विश्व की लगभग 40% जनसंख्या इससे ग्रसित है, जिनमें अधिकांशतः भारत सहित अन्य विकासशील देशों में निवास करती है। इस समस्या ने यूँ तो समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया है परन्तु इससे सर्वाधिक प्रभावित वर्ग है- गर्भस्थ महिलाएँ (50.1%), किशोर लड़कियाँ (40.1%) तथा विद्यालय पूर्व (0-6) आयु वर्ग के बच्चे (42.1%)[1] कुल मिलाकर विश्व की लगभग 3.5 बिलियन जनसंख्या इस व्याधि से ग्रसित है,[2] जिसे अन्य प्रचलित व्याधियों (क्षय रोग, एड्स, कैंसर आदि) के मुकाबले प्रायः अनदेखा किया गया है।

भारत जैसे विकासशील देशों में यह जनस्वास्थ्य समस्या न केवल लोगों के स्वास्थ्य को बाधित करती है वरन् अर्थव्यवस्था का एक मोटा हिस्सा भी इससे निपटने में व्यय हो जाता है। भारत की अत्यधिक मातृत्व मृत्युदर (233/लाख जीवित जन्म) तथा शिशु मृत्युदर (50/1000 जीवित जन्म) (SRS 2010) के लिए रक्ताल्पता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से मुख्य कारण है।[3] जहाँ बच्चों (6-59 माह) में रक्ताल्पता की दर 70 प्रतिशत है वहीं महिलाओं में यह दर 55 प्रतिशत है (एनएफएचएस-3)। यही नहीं यह माता एवं शिशु के शारीरिक, मानसिक एवं कार्यिक स्तर पर भी दीर्घकालिक प्रभाव डालती है जो न केवल व्यक्ति विशेष वरन् समाज एवं देश के विकास के लिए बाधक सिद्ध होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में मातृत्व मृत्यु दर विश्व का 20% से अधिक है जो अत्यंत चिंता का विषय है।

रक्ताल्पता (अनीमिया)

सामान्यतः रक्ताल्पता अर्थात शरीर में रक्त की कमी जिसे रक्त में पाये जाने वाले तत्व हीमोग्लोबिन (Hb) की मात्रा से मापा जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के मानक अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में हीमोग्लोबिन 12 ग्राम/डीएल होना चाहिए, इससे कम होने पर वह अनीमिक कहलाता है।

आयु/लिंग वर्ग	Hb (हीमोग्लोबिन हीमेटोक्रिट) (ग्राम/डीएल/g/dl)	Hematocrit(%)
गर्भस्थ महिला	- 11 मिलीग्राम/डीएल	33
किशोरियों(10-19 आयुवर्ग)	- 12 मिलीग्राम/डीएल	36
बच्चों (0-6 आयु वर्ग)	- 11 मिलीग्राम/डीएल	33
पुरुष	- 13 मिलीग्राम/डीएल	38

*सहायक अनुसंधान अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067

रक्ताल्पता के कारण

अनीमिया के अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु भारत में इसके प्रायः निम्न कारण हैं - (1) खाद्य पदार्थों (दाल/अनाज) एवं फल/सब्जियों (लौह एवं फॉलेट प्रधान) का कम सेवन, (2) खाद्य पदार्थों में लौह तत्व की कम जैव-उपलब्धता, एवं (3) हुक कृमि एवं मलेरिया। (भारत में प्रायः लोगों द्वारा शाकाहारी भोजन का सेवन किया जाता है। शाकाहारी खाद्य पदार्थों में हीम रहित लौह (non haem iron) तत्व पाया जाता है जो मांसाहारी भोजन में पाये जाने वाले हीम लौह तत्व की तुलना में कम अवशोषण क्षमता वाला होता है।)

शरीर में लौह तत्व की कमी मुख्यतः - अ) लौह तत्व के भंडारण/संग्रहण में कमी, (ब) लौह तत्व के परिवहन में कमी, अथवा (स) लौह तत्व की कार्यिक उपलब्धता में कमी के कारण होती है। परिणामस्वरुप रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य से गिर जाता है। हीमोग्लोबिन रक्त का महत्वपूर्ण घटक है जो आक्सीजन का परिवहन कर उसे उत्तकों तक पहुँचाता है जहाँ जीवनोपयोगी ऊर्जा का उत्पादन होता है साथ ही यह उत्तकों में कार्बनडाइऑक्साइड को फेफेड़ों तक पहुँचाकर शरीर का सुदृढ़ीकरण भी करता है। तथा लौह इसी हीमोग्लोबिन की पाइरोल रिंग (Pyrole ring) का केन्द्र बिंदु होता है। साथ ही शरीर की विभिन्न एंजाईमेटिक क्रियाओं में भी लौह तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इस प्रकार इसकी पर्याप्त अनुपलब्धता शरीर की समस्त क्रियाओं पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

रक्ताल्पता की समस्या का स्तर

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा रक्ताल्पता को विश्व में प्रजननीय आयु वर्ग की महिलाओं (15-44 आयु वर्ग) के लिए प्रमुख स्वास्थ्य समस्या माना गया है।[4]

इसी आधार पर इस समस्या का निम्न स्तरों पर विचार करना चाहिएः

- मातृत्व स्वास्थ्य पर रक्ताल्पता के प्रभाव
- दीर्घकालिक मातृत्व अनीमिया का भ्रूण/शिशु के विकास पर प्रभाव
- लौह अनुपूरक उपचार

गर्भावस्था में लौह की आवश्यकता

सामान्यतः किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन के फलस्वरुप लड़का व लड़की दोनों में ही लौह की मांग बढ़ती है परंतु, लड़कियों में मासिक स्राव का शुरुआती दौर होने से शरीर में रक्त का आयतन बढ़ाने के लिए लौह तत्व की मांग अत्यधिक बढ़ती है, जो उसके संपूर्ण प्रजनन काल (15-44 वर्ष) तक रहती है। सामान्यावस्था में प्रतिदिन लगभग 1.36 मि.ग्रा. लौह तत्व की आवश्यकता होती है जिसमें लगभग आधी मात्रा मासिक स्राव से हुई रक्त की कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक होती है। परंतु गर्भावस्था में यही

आवश्यकता बढकर ≤8 मि.ग्रा. अवशोषित लौह/दिन तक पहुँच जाती है, जो पूर्ति के अभाव में अनीमिया के रुप में परिवर्तित होती है।[5] इस बढ़ी हुई मांग के मुख्य कारण हैः-

अ. मातृत्व उत्तकों का निर्माण
ब. भ्रूण तक परिवहन में रक्त की अतिरिक्त आवश्यकता

गर्भावस्था के प्रारंभिक चरण अर्थात प्रथम ट्राईमेस्टर (First Trimester) में मासिक स्राव के बंद होने पर रक्तह्रास रुकने से लौह संग्रहण में वृद्धि के फलस्वरुप शारीरिक लौह आवश्यकता में कमी आती है, परंतु द्वितीय ट्राईमेस्टर में मातृत्व रक्त आयतन एवं लाल रक्त कोशिका भार में वृद्धि के फलस्वरुप लौह तत्व की आवश्यकता में क्रमशः वृद्धि होनी शुरु होती है। तृतीय ट्राईमेस्टर के दौरान भ्रूण रक्त कोशिकाओं के निर्माण (Infant Erthropoiesis)में वृद्धि तथा प्लेसेन्टा (Placenta) द्वारा लौह तत्व संग्रहण होने लगता है। इस प्रकार द्वितीय ट्राईमेस्टर से शारीरिक लौह माँग में वृद्धि होने लगती है जो संपूर्ण गर्भावस्था तथा गर्भावस्था पश्चात भी रहती है।

इस प्रकार एक स्वस्थ महिला (हीमोग्लोबिन>12ग्रा./डीएल) में भी गर्भावस्था में रक्तावश्यकता बढ़ती है तो वे महिलाएँ जो रक्ताल्पता की स्थिति में गर्भधारण करती हैं, के लिए स्थिति अत्यधिक चिन्तनीय हो जाती है।

गर्भावस्था मृत्यु एवं रक्ताल्पता

1. मातृत्व मृत्यु एवं रोगावस्था

गर्भधारण करने पर एक महिला के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। मातृत्व शरीर में अपनी एवं भ्रूण की रक्तावश्यकता को पूर्ण करने के लिए रक्त एवं लौह की आवश्यकता बढ़ने के साथ ही रक्ताल्पता एवं लौह रक्ताल्पता की संभावना सर्वाधिक होती है। कोशिकाओं एवं उत्तकों का दोहन तो होता है परंतु उन्हें पर्याप्त ऊर्जा या पोषण उपलब्ध नहीं होता, ऐसी स्थिति में शरीर इस अतिरिक्त भार को झेल नहीं पाता तथा मातृत्व मृत्यु की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। उनके लिए तो स्थिति और अधिक विकट होती है जो गंभीर रक्ताल्पता (हीमोग्लोबिन<4मि.ग्रा./डीएल) की स्थिति में गर्भाधारण करती हैं। उपलब्ध आंकड़े भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से रक्ताल्पता को मातृत्व मृत्यु की अत्यधिक दर का एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं।[6] प्रसव के समय रक्त परिवहन तंत्र पर पड़ने वाले अत्यधिक दबाव को हृदय झेल पाने में अक्षम होता है और हृदय गति रुकने (कार्डियक फेलियर) की संभावनाएँ बढ़ती हैं जो मृत्यु का एक मुख्य कारण है। प्रसव के दौरान रक्तस्राव से रक्त की अत्यधिक हानि और कभी-कभी सामान्य रक्तस्राव भी रक्ताल्प (अनीमिक) महिलाओं में पर्याप्त एवं उपयुक्त चिकित्सा की अनुपलब्धता की स्थिति में जानलेवा सिद्ध होती है। साथ ही घावों के शीघ्र ठीक न होने पर संक्रमण की संभावनाएँ बढ़ती हैं जो घातक सिद्ध हो सकती हैं। हालांकि इन संक्रमणों की गंभीरता पर प्रकाशित आंकड़ों का अभाव है परंतु यह स्पष्ट है कि ये शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

गंभीर रक्ताल्पता (हीमोग्लोबिन<4मि.ग्रा./डीएल) से ग्रसित गर्भस्थ महिलाओं में लिम्फोसाईट (एक प्रकार की श्वेत कणिकाएँ) स्टीम्यूलेशन कम होता है (कम सीरम आयरन/ट्रान्सफेरिन सांद्रता के कारण)। एक अध्ययन में ऐसी महिलाओं में लौह पूरक तत्व (सप्लीमेंटेशन) देने पर लिम्फोसाईट स्टीम्यूलेशन में सुधार पाया गया है।[7] प्रतिरोधक क्षमता के क्षीण होने तथा संक्रमण की संभावनाएँ बढ़ने पर ये विभिन्न रोगों के प्रति आसान ग्राह्य होती है।

न्यूनतम भार एवं समयपूर्व प्रसव

जन्म के समय शिशु का भार 2.5कि.ग्रा. से कम होने पर उसे न्यून जन्म भार (Low Birth Weight) श्रेणी में रखा जाता है। चूंकि भ्रूण को आवश्यक लौह तत्व की पूर्ति मातृत्व परिवहन तंत्र से होती है। मातृत्व रक्ताल्पता की स्थिति में भ्रूण तक पर्याप्त पोषण नहीं पहुँच पाता जो उसके विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है साथ ही उसमें रक्ताल्पता एवं लौह संग्रहण में कमी जैसी स्थिति उत्पन्न करता है जो शिशु के न्यून जन्मभार के साथ-साथ अनेक दीर्घकालिक प्रभाव डालता है।[8] मातृत्व हीमोग्लोबिन कम होने की स्थिति में गर्भाधान समय में भी कमी देखी गई है।

भ्रूण में लौह परिवहन का नियंत्रण

भ्रूण में आवश्यक लौह तत्व की मांग को मातृत्व रक्त परिवहन तंत्र से पूरा किया जाता है तथा अधिकांश लौह का परिवहन गर्भावस्था के 30वें हफ्ते में होता है, इसके लिए मातृत्व लौह अवशोषण में वृद्धि होती है तथा 12-25 हफ्तों में मातृत्व लाल कोशिका भार बढ़ने लगता है। भ्रूण तक लौह परिवहन की संपूर्ण प्रक्रिया प्लेसेन्टा द्वारा नियंत्रित होती है, जो दो कारकों पर निर्भर है:-

1. प्लेसेन्टल कोशिकाओं का एपिकल (Apical)सतह पर ट्रान्सफेरिन ग्राहकों की संख्या तथा
2. कोशिकाओं में फेरीटिन (Ferritin) की सान्द्रता

सीरम ट्रान्सफेरिन (Serum Transferrin) मातृत्व परिवहन तंत्र से लौह लेकर प्लेसेन्टा की सतह सीरम ट्रान्सफेरिन ग्राहकों तक पहुँचाता है, जहाँ ये कोशिकाओं पर स्थित फेरिटिन से बंधकर एपोट्रान्सफेरिन द्वारा भ्रूण के परिवहन तंत्र तक पहुँचाया जाता है।

मातृत्व लौह स्तर कम होने पर आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्लेसेन्टा अपनी सतह पर ट्रान्सफेरिन ग्राहकों की संख्या बढ़ा लेता है तथा अधिक लौह अवशोषण को रोकने के लिए फेरिटिन का उत्पादन करता है। इस प्रकार प्लेसेन्टा लौह ट्रान्सफर सिस्टम द्वारा भ्रूण में लौह परिवहन को नियंत्रित करता है।

ट्रान्सफेरिन (Transferrin) - परिवहन में आवश्यक लौह ट्रान्सफर प्रोटीन

शिशु स्वास्थ्य एवं रक्ताल्पता

जन्म के समय न्यून जन्मभार एवं रक्ताल्पता शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर दीर्घकालिक प्रभाव डालते हैं। ऐसे शिशु अपने आगे के वृद्धिकाल में भी इसकी पूर्ति नहीं कर पाते हैं। लौह तत्व मस्तिष्क विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक हैं तथा यह न केवल कोशिका विभेदीकरण वरन प्रोटीन संश्लेषण, हॉरमोन उत्पादन, कोशिकीय ऊर्जा उपापचयन तथा कोशिकीय क्रियाओं में भी आवश्यक होता है।[9] रक्ताल्पता की स्थिति में शिशु का मस्तिष्क विकास अवरुद्ध होने से उसकी बौद्धिक क्षमता, शारीरिक विकास एवं क्रियाशीलता तथा वातावरणीय व्यवहार क्षमता प्रभावित होती है। बच्चे की सीखने की क्षमता तथा विद्यालय प्रदर्शन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही लौह रक्ताल्पता प्रतिरोधक क्षमता को घटाकर विभिन्न संक्रमणों की संभावनाएँ भी बढ़ाता है - जैसे- निमोनिया, दस्त (डायरिया) आदि। शारीरिक कार्य क्षमता एवं उत्पादन को कम कर कमजोरी और थकान पैदा करता है।

माता-शिशु स्वास्थ्य एवं रक्ताल्पता

यद्यपि खून की कमी वाली अनीमिक माताओं एवं उनके शिशुओं के व्यावहारिक लक्षणों पर कोई प्रकाशित आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं परंतु लौह रक्ताल्पता को शिशुओं के विकासीय स्तर पर खराब प्रदर्शन के साथ संबंधित किया जाता है, जिसे लौह सप्लीमेन्टेशन से सुधारा जा सकता है। मस्तिष्क में लौह तत्व न्यूरोट्रान्समीटर (Neurotransmitter) के निर्माण में प्रयुक्त होता है जो मानव व्यवहार को प्रभावित करता है, रक्ताल्पता प्लेटलेट मोनामीन ऑक्सीडेज (Platlet Monamin Oxidase) तथा डी2 डोपामीन (D_2 Dopamine) ग्राहक कार्यिक क्षमता को भी कम करती है।[10]

व्यावहारिक अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि सामान्यतः स्वस्थ माताएँ अनीमिक माताओं की अपेक्षा अपने बच्चों की देखभाल में दोगुना समय व्यतीत करती हैं। उनका व्यवहार एवं बच्चों के साथ बिताया गया समय बच्चे के विकास पर स्पष्ट प्रभाव डालता है।

रक्ताल्पता एवं मातृत्व दुग्ध उत्पादन

अनीमिक तथा स्वस्थ माताओं में दुग्ध उत्पादन या स्रवण प्रक्रिया में अंतर संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं जो रक्ताल्पता तथा दुग्ध उत्पादन/स्रवण के मध्य स्पष्ट संबंध स्थापित कर सके। इस संबंध में और अधिक गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

रक्ताल्पता के कारण कार्यिक क्षमता का ह्रास

प्रायः रक्ताल्पता व्यक्ति की कार्यिक क्षमता को प्रभावित करता है परंतु गर्भावस्था में यह किस हद तक प्रभाव डालता है इससे संबंधित आंकड़ों का अभाव है, जो अत्यंत चिन्तनीय विषय है क्योंकि यह देखा गया है कि प्रायः महिलाएँ गर्भावस्था में भी अत्यधिक शारीरिक श्रम (Labour Intensive) कार्यों में लगी रहती हैं, जैसे कृषि कार्य, पानी ढ़ोना, ईंधन एकत्र करना आदि। स्वस्थ गर्भावस्था प्राप्ति के लिए संबंधित आंकड़े एकत्र करना अत्यंत आवश्यक है।

रक्ताल्पता का आर्थिक महत्व

रक्ताल्पता स्वास्थ्य की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, यह देश के आर्थिक विकास पर भी नकारात्मक प्रभाव डालती है। बच्चों एवं किशोरों की बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमताओं को कम कर उत्पादकता घटाती है साथ ही आर्थिक सम्पन्न्ता को भी कम करती है। भारत में प्रतिवर्ष कुल सकल घरेलू आय का लगभग 1.27% इस स्वास्थ्य समस्या के निपटारे में खर्च होता है जो हमारे पड़ोसी देशों बंग्लादेश के 0.9% तथा चीन के मात्र 0.2% की तुलना में काफी अधिक है।[11]

रक्ताल्पता नियंत्रण हेतु जनस्वास्थ्य कार्यक्रम

भारत विश्व का प्रथम विकासशील देश है जिसने खून की कमी की समस्या के निपटारे के लिए राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम चलाए। 1970 में शुरु किया गया राष्ट्रीय पौषणात्मक रक्तालप्ता नियंत्रण कार्यक्रम जिसके अंतर्गत बच्चे (0-6 साल), गर्भस्थ महिलाएँ तथा स्तनपान कराने वाली माताओं को आयरन तथा फॉलिक अम्ल (आईएफए)(Folic Acid IFA) कम से कम 100 दिनों तक देने का प्रावधान रखा गया है।

1975 में शुरु किया गया एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम जिसके अंतर्गत मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य एवं पोषण विकास के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इनके अलावा समय-समय पर अनेक सर्वेक्षण एवं अनीमिया बचाव एवं नियंत्रण कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं, परंतु इन राष्ट्रीय स्तर के वृहद कार्यक्रमों के चलते अनीमिया की व्यापकता में कोई कमी नहीं आई है तथा इस जनस्वास्थ्य समस्या का प्रारुप जस का तस है।

निर्धारित आईएफए खुराक[12]

वयस्क (गर्भस्थ महिलाएँ जिनमें अनीमिया नहीं है) - एक गोली (100मि.ग्रा.Fe+500Mg फॉलिक एसिड)/दिन 100 दिनों तक
बच्चों (1-5 साल आयु) - एक गोली (20मि.ग्रा.Fe+100mg फॉलिक एसिड)/दिन (100 गोली/वर्ष)

गंभीर अनीमिया (महिलायें) - 3 व्यस्क गोली/दिन

कार्यक्रमों की असफलता के कारण

- अपर्याप्त पहुँच
- अमल की गंभीरता का अभाव
- अपर्याप्त परीक्षित मानव संसाधन
- अपर्याप्त बंटन (आईएफए गोली/पीने वाली खुराक)
- अवांछनीय प्रभाव (साइड्इफेक्ट्स) जैसे - पाचन तंत्र पर अवांछनीय प्रभाव (गेस्ट्रोइंटसटाइनल साइड इफेक्ट्स)
- निर्देशों की जटिलता

उपरोक्त कारणों के अलावा अशिक्षा, पारम्परिक खाद्य मान्यताएँ तथा सबसे महत्वपूर्ण पोषक खाद्य पदार्थों की जानकारी का अभाव है क्योंकि ऐसा नहीं कि केवल गरीब एवं अशिक्षित लोग ही इस समस्या से ग्रसित हैं वरन् उचित जानकारी के अभाव में शिक्षित एवं आर्थिक रुप से संपन्न लोग भी इसका शिकार होते हैं। यह स्पष्ट है कि 98% लौह तत्व हमें हमारे खाद्य पदार्थों में लौह की जैविक अनुपलब्धता के कारण पर्याप्त नहीं होता है।

रक्ताल्पता निवारण के उपाय

रक्ताल्पता (अनीमिया) एक जन-स्वास्थ्य समस्या है अतः आवश्यक है कि इसके निवारण एवं नियंत्रण के लिए जन-स्वास्थ्य एवं चिकित्सीय दोनों ही तरीकों को ध्यान में रखा जाए।

जन-स्वास्थ्य प्रयासों के अंतर्गत आवश्यक है -

1. शिक्षा एवं आयरन फॉरटिफिकेशन को अधिक महत्व देना।
2. गर्भस्थ महिलाओं, स्तनपान कराने वाली माताओं एवं बच्चों में उपयुक्त पोषक पदार्थों एवं आयरन फोरटिफाइड खाद्य पदार्थों की जानकारी एवं अधिक सेवन को प्रोत्साहन करने वाले कार्यक्रम चलाना।
3. खाद्य पदार्थों में लौह तत्व की जैविक उपलब्धता को बढ़ाने के लिए जेनेटिकली परिवर्तित (लौह अवशोषण को कम/अवरुद्ध करने वाले तत्वों जैसे -फलियों से फॉलिक एसिड को हटाकर अवशोषण को प्रेरित करने वाले तत्व जैसे माइक्रोन्यूट्रियंट को शामिल करना) खाद्य पदार्थों से संबंधित अनुसंधान एवं उनकी पैदावार को बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।

4. उपयुक्त खाद्य पदार्थों एवं स्तनपान के तरीकों की उचित शिक्षा लोगों तक पहुँचाना।
5. फॉरटिफायइड खाद्य पदार्थों के उचित मूल्य एवं आसान उपलब्धता की व्यवस्था करना।
6. लोगों में जागरुकता फैलाने के लिए वृहद स्तर पर कार्यक्रम चलाना एवं इन कार्यक्रमों को गंभीरता से लागू करने एवं उनके सफल संचालन पर अधिक ध्यान देना।

चिकित्सीय प्रयास

1. प्रथम ट्राइमेस्टर से ही महिलाओं को चिकित्सा केन्द्रों पर जाँच के लिए प्रोत्साहित करना;
2. इन्सटिट्यूशनल डिलिवरीज को प्रोत्साहित करना;
3. अनीमिया को कम करने एवं शरीर में लौह संग्रहण बढ़ाने के लिए ओरल आयरन सप्लीमेंटेशन उपलब्ध कराना तथा उचित खुराक एवं लेने के तरीकों की पर्याप्त जानकारी देना;
4. किशोरावस्था से ही लड़कियों में अनीमिया के स्तर की जाँच एवं इलाज के उपाय करना; तथा
5. सबसे आवश्यक चिकित्सा की पर्याप्त एवं आसान उपलब्धता।

इस प्रकार आवश्यक है इस जनस्वास्थ्य समस्या की गंभीरता एवं इसके दूरगामी प्रभावों की गंभीरता को समझते हुए इसे एक सामान्य समस्या न मान कर एक गंभीर रोग के रुप में समझना होगा जो लोगों के शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक हानि के लिए उत्तरदायी है तथा देश के विकास में बाधक है।

संदर्भ

1. यूनीसेफ, डिलिवरिंग एसेन्शियल माइक्रोन्यूट्रियंटः आयरन उपलब्ध है।
http:/www.unicef.org/nutrition.index-iron.html
2. एसीसी/एससीएन: फोर्थ रिपोर्ट ऑन द वर्ल्ड न्यूट्रिशन सीच्यूयेशन; प्रोग्रेस इन न्यूट्रीशन, जेनेवा (2010)।
3. न्यूट्रिशनल अनीमियाज रिपोर्ट ऑफ द वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनाईजेशन साइंटिफिक ग्रुप जेनेवा वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनाइजेशन, 1968।
4. लॉस ऑफ डेलीज् - डिस्ऐबिलिटि एड्जस्टेड लाइफ ईयर्स, विश्व स्वास्थ्य संगठन रिपोर्ट।
5. इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिसन, न्यूट्रिशन डयूरिंग प्रेगनेन्सी, वाशिंगटन डी सी, नेशनल एकेडमी प्रेस, 1990।
6. प्रेगनेन्सी एंड आयरन डेफिशियन्सी, एनरिसॉल्वड इश्यूज लिन्डसेज एच ऐलन, पीएचडी, अप्रैल, 1997; 91-101।
7. सेल्यूलर इम्यूनिटि स्टेट्स इन अनीमिया इन प्रेगनेन्सी कन्डोई ए., भाटिया बी.डी., पांडे एस एट मेल, इण्डियन जॉरनल आफ मेडिकल रिसर्च, 1981; 94; 10-14।
8. रिलेशन बिटविन मेटरनल हीमोग्लोबिन कॉन्सनट्रेशन एंड बर्थवेट इन डीफरेन्ट डायनिक ग्रुप्स, BMJ 1995; 310:489-91।
9. पोषण समीक्षा आयरन इन ब्रेन 1993; 51; 157-70।

10. ज्योस सी मेक्नन तथा ब्रूस एन एम्स, एन ऑवरव्यू ऑफ एविडेन्स फोर ए कंज्यूबल रिलेशन विटविन आयरन डेफिशिऐन्सी ड्यूरिंग डेवेलेपमेन्ट एण्ड डेफिशिट इन कोगनेटिव ऑर विहेविरल फंक्शन, रीव्यू, ऑरटीम्ल, अमेरिकन जनरल ऑफ क्लीनिकल न्यूट्रिशन, vol.85, No.4, 931-945, अप्रैल 2007।

11. एमआई/यूनीसेफ विटामिन एवं खनिज अल्पता (Vit-e-Mineral Deficiency) ए ग्लोबल प्रेस रिपोर्ट 2004।

12. नेशनल न्यूट्रिशनल कंट्रोल प्रोग्राम इन इंडिया, कुमार ए., इण्डियन जॉरनल आफ पब्लिक हेल्थ, 1999. जनवरी-मार्च: 43(1): 3-5, 16।

जन-स्वास्थ्य में स्वच्छता का महत्व

अरविन्द कुमार*

हमारे जीवन में स्वास्थ्य एवं इससे संबद्ध पक्षों का अत्यंत महत्व है। यदि हमारा शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य ठीक एवं संतुलित है तो हम एक बेहतर जीवन यापन कर सकते हैं तथा स्वयं एवं पारिवारिक उन्नति के लिए भरसक प्रयास कर सकते हैं। यदि हम गहन दृष्टि से देखें तो जन स्वास्थ्य एक व्यापक अवधारणा है, जो रोगों के निवारण से संबंधित विज्ञान एवं कला से जुड़ा है, विज्ञान इसलिए कि निरंतर चिकित्सा के नये कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं, वैज्ञानिक और प्रोद्यौगिकी के विकास ने गंभीर बीमारियों के उपचार हेतु अनेक सुविधायें उपलब्ध कराई हैं जिससे औसत आयु में वृद्धि हुयी है, और कला इसलिए कि जीवन में हम जितना संयम और संतुलित जीवनशैली को अपनाएंगे, संभवतः हमारा स्वास्थ्य श्रेष्ठ बना रहेगा। प्रत्यक्ष रूप में, जन स्वास्थ्य समाज, संगठन, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के साथ साथ किसी भी देश के समुदायों तथा व्यक्तियों के जीवन और स्वास्थ्य का वर्धन करता है। आज जन-स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु प्रत्येक देश में पर्याप्त बल दिया जा रहा है तथा इसके महत्व को सही अर्थों में समझा जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्वास्थ्य को एक पूर्ण शारीरिक-मानसिक एवं सामाजिक कल्याण तथा रोगमुक्त जीवन स्थिति के रूप में उल्लिखित एवं पारिभाषित किया गया है। सही अर्थों में जन-स्वास्थ्य का लक्ष्य मनुष्य के रोगों का निवारण एवं उपचार करके जीवन को आनंदमयी तथा बेहतर बनाना है। जन अर्थात् लोगों को स्वास्थ्य की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब वह स्वास्थ्य प्राप्ति संबंधी उपायों के बारे में अवगत हो, स्वास्थ्य शिक्षा संबंधी बुनियादी पक्षों का ज्ञान हो तथा वह इसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहें।

जन-स्वास्थ्य एवं स्वच्छता की महत्ता

यदि हम गंभीरता से मनन करें तो जन-स्वास्थ्य एवं स्वच्छता दोनों में निकट संबंध पाएँगे। किसी व्यक्ति को भोजन व पोषण तो ठीक प्रकार से प्राप्त होता हो किन्तु निजी स्वच्छता पर ध्यान न दिया गया हो तो उस व्यक्ति के रोगग्रस्त होने की संभावना अधिक होती है अथवा उसके स्वास्थ्य का समुचित विकास भी नहीं होगा। अन्य शब्दों में, स्वास्थ्य, स्वच्छता, जल तथा पोषण के मध्य सीधा संबंध है। अपने आस-पास देखने पर पता चलता है कि हममें से कुछ लोग व्यक्तिगत स्वच्छता पर पूरा ध्यान देते हैं, कुछ लोग थोड़ा ध्यान देते हैं तथा कई लोग शौच, भोजन से पूर्व तथा बाद में हाथ, मुँह व दाँतों की साफ सफाई, धुलाई आदि बातों पर ध्यान नही ही देते फलस्वरूप अनेक रोगों को आमंत्रित कर बैठते हैं।

*हिन्दी अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली-110067

स्वच्छता संबंधी अभ्यास

'स्वच्छता' शब्द स्वयं में व्यापक क्षेत्र समाहित किए हुए है। उपरोक्तानुसार स्वच्छता तथा जनस्वास्थ्य में प्रत्यक्ष संबंध है। जीवन में अच्छी आदतों एवं अभ्यासों को अपनाने की नींव बचपन से ही डाली जाती है। स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छता संबंधी अभ्यासों जैसे - भोजन से पहले तथा बाद में हाथ धोना, नाखून काटना, दाँतों व मुँह की सफाई, नित्य स्नान करना, साफ वस्त्र पहनना आदि की शिक्षा बच्चों को मूल रूप से माता-पिता द्वारा दी जाती है। स्थिति तब विकट होती है जब माता-पिता ही इन सब पक्षों/अभ्यासों से अवगत न हों अथवा स्वच्छता संबंधी अभ्यासों के बारे में कम जानते हों।

स्कूली स्तर पर स्वच्छता अभ्यास

सामान्यतः बच्चों को जो आदतें एवं अभ्यास घर पर माता-पिता तथा स्कूल में शिक्षकों द्वारा अपनाने के बारे में बताया-सिखाया जाता है उसका प्रभाव उनमें जीवन पर्यन्त रहता है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि बच्चों को स्वच्छता संबंधी आदतों, स्वास्थ्य की देखभाल, पोषण, स्वच्छ पेयजल प्रयोग, संतुलित आहार, व्यायाम आदि के बारे में यथायोग्य स्वास्थ्य शिक्षा दी जानी चाहिए। बच्चों को स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी पक्षों पर शिक्षित करते समय निम्नलिखित घटकों को शामिल किया जा सकता हैः

1. **हाथों की स्वच्छताः** हमारे देश के विभिन्न राज्यों, प्रदेशों तथा परिवारों में अनेक बच्चों को शौच जाने के बाद हाथ धोने, विशेषतः साबुन से अच्छी प्रकार से हाथ धोने का कम ही अभ्यास होता है, विशेषाकर ग्रामीण, पिछडे, और झोपडपट्टी क्षेत्रों में। इसके परिणामस्वरूप वह अनेक प्रकार के रोगों का शिकार हो जाते हैं। उन्हें यह सिखाया जाना चाहिए कि प्रत्येक बार शौच के बाद अंगुलियों तथा हाथों को साबुन से अच्छी तरह से धोना किस प्रकार आवश्यक है, जिससे कि मल व गंदगी का कोई भी कीटाणु हाथों, अंगुलियों के बीच न चिपका रहे। इसी प्रकार, भोजन करने से पूर्व एवं पश्चात् तथा मिट्टी से संबंधित अथवा अन्य कोई कार्य, जिसमें हाथ गंदे होते हों, के बाद हाथ साबुन से धोना आवश्यक है।

2. **नित्य स्नान करनाः** हम सभी के लिए शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रतिदिन कार्य करने, बाहर आने-जाने, पसीने की दुर्गन्ध, तथा पसीने के कारण शरीर के विभिन्न अंगों पर मैल तथा गंदगी के कण जमा हो जाते हैं। जिन्हें स्नान द्वारा साफ करना आवश्यक होता है, ताकि हम स्वयं को स्वस्थ एवं प्रफुल्लित अनुभव कर सकें। शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को इसके महत्व के विषय में शिक्षित किया जाना आवश्यक है ताकि अन्य बच्चों पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़े।

3. **स्वच्छ पेयजल का प्रयोगः** हमें स्वयं भी स्वच्छ पेयजल का प्रयोग करना चाहिए तथा बच्चों को भी पीने, हाथ धोने, नहाने आदि कार्यों के लिए स्वच्छ पेयजल का उपयोग करने के बारे में परिचित कराना आवश्यक है। यदि हम स्वयं भोजन पकाने, पीने तथा अन्य संबंधित कार्यों के लिए अस्वच्छ या असुरक्षित जल का प्रयोग करेंगे तो बच्चे भी वैसे अभ्यास एवं व्यवहार के आदी हो जाएंगे। इससे वे हैजा, अतिसार,

उदर रोगों आदि रोगों में से किसी रोग से ग्रस्त हो सकते हैं। अतः उन्हें स्वच्छ पेयजल का प्रयोग करने के महत्व को बताया जाना चाहिए।

4. **पर्यावरणात्मक स्वच्छताः-** पर्यावरणात्मक स्वच्छता का प्रारंभ घर के पारिवारिक परिवेश से आस-पास के घरों/मुहल्लों तथा शहर व गाँव तक हो सकता है। माता-पिता तथा शिक्षकों द्वारा बच्चों को घर में तथा अपने आस-पास साफ-सफाई रखने तथा स्वच्छ वातावरण बनाए रखने के प्रति शिक्षित किया जाना चाहिए, ताकि वह एक भावी सजग तथा जिम्मेदार नागरिक बन सकें। उन्हें स्वास्थ्य के लिए धुँए, धूल-मिट्टी से बचने, जल-स्वच्छता, हरे-भरे वातावरण की अनिवार्यता आदि पक्षों के बारे में शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। चूँकि, यह सत्य है कि आज के बच्चे ही कल के सजग नागरिक एवं राष्ट्र की धरोहर हैं, इसलिए स्वच्छता अभ्यासों तथा व्यवहार के प्रति इन्हें शिक्षित करना प्रत्येक माता-पिता तथा शिक्षक का दायित्व है।

जनस्वास्थ्य एवं स्वच्छता की अवधारणा को हम देश के शहरी तथा ग्रामीण परिवेश के संदर्भ में देखें तो हम पाएंगे कि शहरों में जन-स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के बारे में हम स्वयं भी सचेत हो रहे हैं तथा स्कूलों में शिक्षक और घर-परिवारों में माता-पिता द्वारा भी बच्चों को बहुत कुछ सिखाया पढ़ाया जाता है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी अभ्यासों एवं व्यवहार की स्थिति अत्यंत सोचनीय है। भारत के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों तथा दूरवर्ती इलाकों में खुले इलाकों, खेतों तथा रेल की पटरी के किनारे शौच करने से वातावरण दुर्गन्धमय व दूषित बनते चला जाता है। इसका कारण- सार्वजनिक शौच सुविधाओं का अभाव, स्वास्थ्य पर इसके पड़ने वाले कुप्रभावों के प्रति अज्ञानता अथवा जन-जागरूकता की कमी आदि है, किन्तु यह परिदृश्य विश्व में देश की नकारात्मक छवि प्रस्तुत करता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लोगों के पास आर्थिक अभाव होने, अशिक्षित अथवा कम शिक्षित होने, साधनों के अभाव होने के कारण उन्हें विवश होकर खुले में शौच के लिए जाना पड़ता है। यद्यपि अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षाकृत स्थितियों में सुधार हुआ है। तथापि आज भी अधिकांश लोग शौच के पश्चात् तालाब अथवा गंदे जल व मिट्टी से हाथ धोकर इतिश्री समझ लेते हैं। तत्पश्चात् वह उन्हीं दूषित व संक्रमित हाथ द्वारा भोजन भी कर लेते हैं। आँकड़ों पर दृष्टिपात करें तो सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत के ग्रामीण क्षेत्र में 78.9% लोगों के पास घरों में निजी शौचालय की सुविधा नहीं थी। गाँवों के घरों में तथा आस-पड़ोस में भी शौचालय की सुविधायें न होने के कारण पुरूषों को तो उतनी असुविधा नहीं होती है, जितनी ग्रामीण महिलाओं को झेलनी पड़ती है। खुले मैदानों में शौच करने तथा स्वच्छता का ध्यान न रखने के कारण गाँव-देहातों के स्त्री-पुरूष व बच्चे अतिसार तथा जल जनित रोगों से ज्यादा ग्रस्त पाए गए हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि दस्त तथा अन्य संक्रमण होने के लगभग 89% मामले स्वच्छ जल के अभाव तथा समुचित स्वच्छता अभ्यासों का पालन किए जाने से संबंधित होते हैं। इस अज्ञानता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की मृत्यु तक होने की संभावना होती है, विशेषतः कम आयु के बच्चे इस संक्रमण को न झेल पाने के कारण अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। इस स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में जन स्वास्थ्य एवं स्वच्छता अभ्यासों को संयुक्त कर एक अभियान का रूप देने का प्रारम्भ सन् 1951-56 में जल आपूर्ति एवं स्वच्छता को एक मुद्दा बनाकर किया गया था। किन्तु, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे करोड़ों ग्रामीण लोगों के लिए अभी भी सार्वजनिक शौचालय की पूर्णरूपेण सुविधायें उपलब्ध नही हैं। समुचित स्वास्थ्य शिक्षा एवं स्वच्छता अभ्यासों से वह अभी भी भली-भाँति परिचित नहीं हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के 12 अप्रैल, 2005 से प्रारंभ होने के बाद जिला तथा ग्राम स्तर पर जन स्वास्थ्य तथा स्वच्छता अभ्यासों के प्रति समुदाय को शिक्षित करने को एक अभियान का रूप दिया गया तथा लोगों को इन अभ्यासों को अपनाने के लिए प्रेरित करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण स्वच्छता को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं एवं आशाओं को चरणबद्ध रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। समुदाय से प्राप्त सूचनानुसार लोगों की भागीदारी में कतिपय वृद्धि हुई है, फिर भी इस दिशा में पंचायतों और ग्रामीण समुदाय को सशक्त बनाने की जरूरत है। सन 1994 से प्राप्त संवैधानिक अधिकार के अंतर्गत पंचायतों को सौंपे गए कार्यों में ग्रामीण स्वच्छता और पेयजल सहित अन्य जन स्वास्थ्य की पहल यद्यपि हुई है। इसी संदर्भ में 'ग्रामीण स्वास्थ्य और स्वच्छता समिति' का गठन एक अच्छी शुरूआत है। इस समिति से आशा है कि जन भागीदारी के माध्यम से स्थानीय स्वच्छता का स्तर निश्चित रूप से सुधरेगा।

निष्कर्ष रूप में देश के सभी क्षेत्रों में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जन स्वास्थ्य प्राप्ति का लक्ष्य बहुत कुछ स्वच्छता अभ्यासों के अनुसरण पर निर्भर है। अतः इसे एक चरणबद्ध रूप में जन-जागरण अभियान तथा प्रेरक रूप में संचालित किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. बेवसाइट www.public hygine sanitation and health concept.nic.in
2. डब्ल्यू.एच.ओ./यूनिसेफ ज्वाइंट मानीटरिंग प्रोग्राम फॉर वाटर सप्लाई एण्ड सैनिटेशन, 2000.
3. सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान - लेख पृ-55, धारणा अंक- 14.

वर्तमान जीवन पद्धति एवं स्वास्थ्य समस्याएं

डॉ राजीव कुमार रावत*

वर्तमान में हम चिकित्सा विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियों की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। चिकित्सा विज्ञान एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हर क्षेत्र की प्रगति का कोई न कोई अंश अवश्य है। कंप्यूटर, यांत्रिकी, शिल्प, स्थैतिकी, गतिकी, उप स्थैतिकी, नाभिकीय, परमाणविकीय, अंतरिक्ष विज्ञान, अभियांत्रिकी आदि में से किसी भी शाखा में हुई प्रगति एवं अनुसंधान चिकित्सा विज्ञान की कुछ न कुछ सहायता अवश्य कर रहा है चाहे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष। स्वास्थ्य से प्रत्येक जीव का सरोकार है लेकिन तकनीक, विज्ञान, प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों एवं संचार क्रांति के दो महत्वपूर्ण अंगो साफ्टवेयर एवं हार्डवेयर की शक्तियों से संचय होने के बावजूद भी आज व्यक्ति के स्वास्थ्य में संतोषजनक प्रगति प्रतीत नहीं होती । इसे एक विडंवना ही कहा जा सकता है। यह मात्र आलोचनात्मक कथन या विज्ञान के विकासक्रम के प्रति कोई नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं है बल्कि यह मूल्यांकन का प्रयास है कि जितना चिकित्सा विज्ञान शक्तिशाली एवं मेधासंपन्न हुआ है उस अनुपात में राष्ट्र और समाज स्वस्थ हुए हैं या नहीं? ऐसा लगता है कि आज स्वास्थ्य और राष्ट्र के समक्ष गंभीर चुनौती है हम अनेक दृष्टियों से जितना विकसित हो रहे हैं उसी अनुपात में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर अस्वस्थ होते जा रहे हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी जगत में हमने जितने साधन जुटाये हैं, उनसे हमारा कार्य आसान तो हुआ है, किन्तु हमारी जीवन शैली में जितना अपेक्षित परिवर्तन एवं सुधार होना चाहिए था वैसा हुआ नहीं है।

कदाचित यह स्वीकार कर लिया गया है कि विकास और बीमारी साथ-साथ चलते हैं क्योंकि आज जीवन यापन की गति में जितनी तीव्रता आई है उसी तेजी से व्याधियों के प्रकार और मनुष्य की विवशता में भी वृद्धि हुई है। धनवान एवं निर्धन दोनों ही वर्ग अनेकानेक शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से घिरे हुए हैं। एक विचित्र स्थिति यह भी हाल के वर्षों में देखने को मिलती है कि स्वास्थ्य की दशाओं में नई-नई चुनौतियाँ सामने आ रही हैं और बिगड़ते स्वास्थ्य के कारणों से हम काफी विवश हो चले हैं। धनाढ्य वर्ग स्वास्थ्य एवं आयुष्य धन के बल पर चाहता है लेकिन विवश है और चिकित्सा विज्ञान की आधुनिकतम खोजें उसकी वहाँ तक तो मदद कर रहीं हैं जहाँ तक मृत्यु को धकेला जा सकता है अथवा जीवित होने का भ्रम पैदा किया जा सकता है किन्तु उसे स्वस्थ रख पाने में असफल हैं। साथ ही निर्धन वर्ग धनाभाव से घिरा हुआ है और काफी हद तक विवश है और सामान्य औषधियों से भी वंचित है ।

*हिन्दी अधिकारी, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई आई टी), खडगपुर, पश्चिम बंगाल।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से कोई भी वर्ग स्वस्थ नही है और व्यक्ति अपनी आय का एक बहुत बड़ा भाग स्वस्थ शरीर पाने की अभिलाषा में और इलाज में व्यय कर रहा हैं और आज स्थिति यह है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति में एक बीमारी का इलाज करते हुए अन्य बीमारी होती चली जाती हैं और शरीर के अंग रोगग्रस्त होते जाते हैं। पहले एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में एक चिकित्सक एमडी हुआ करता था आज अनेक शाखा विशेषों में एम डी एवं एमएस होते हैं। आयुर्वेद के चिकित्सक जिन लक्षणों का परीक्षण आँख, जीभ, नब्ज आदि देखकर कर लिया करते थे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान निदान में ही लाखों रुपये खर्च करा देता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान निदान एवं शल्य उपचार आदि से सशक्त एवं सक्षम तो अवश्य हुआ है किंतु सकारात्मक समाधान एवं औषधि रहित जीवन की पद्धति विकसित करने में विफल नजर आ रहा है और दैनिक जीवन अनेकानेक औषधियों पर निर्भर होता जा रहा है और आधुनिक विकास की अवधारणा के जाल में फंसा व्यक्ति वर्तमान जीवन पद्धति के कारण व्याधिग्रस्त होता जा रहा है।

आइए, आज एक सामान्य गाँव के युवक की दिनचर्या एवं जीवन पद्धति का अवलोकन करते हैं। कृषि योग्य भूमि में हो रही कमी, पशुपालन की घटती प्रवृत्ति एवं शहरों की ओर हो रहे पलायन से आज गाँव में ब्रहम मुहुर्त में जगने वालों की संख्या नगण्य होती जा रही है जिससे गाँव के लोगों में भी फेंफड़ो की बीमारी, अवसाद एवं कैंसर जैसी बीमारियां आम होती जा रही हैं। पहले व्यक्ति सुबह उठकर पानी पीकर खेतों की ओर टहलता हुआ जाता था, प्रातः काल दही मठ्ठा का सेवन करता था, धूप में तेल मालिश से शरीर का रक्त प्रवाह ठीक रहता था, कोलस्ट्राल, गठिया आदि व्याधियों से मुक्त रहता था। दिन भर का शारीरिक परिश्रम और व्यस्तता उसे आनंदित रखती थी, पसीने में शरीर की बहुत सी व्याधियाँ निकल जाती थीं। शाम के समय की चौपाल और बैठकों का हल्का-फुल्का मनोरंजन उसे मानसिक व्याधियो एवं तनाव से मुक्त रखता था तथा आश्वस्त करता था कि वह अकेला नहीं है। आधुनिक मनोरंजन, केबिल टीवी, फिल्म, सीरियल, नग्नता, हिंसा आदि के दृश्य उसके मस्तिष्क में नहीं प्रवेश होते थे और वह बड़ा आनंद से जीता था। हम ज्यादा पुरानी कहानी नहीं सुना रहे बल्कि मात्र 40-50 वर्ष पहले तक का भारतीय जन जीवन, रहन-सहन, आहार-विहार और चिंतन एवं जीवन पद्धति प्रकृति के अधिक निकट थी और जीवन यापन की इतनी तनावपूर्ण प्रक्रिया नहीं थी बल्कि सहज प्रवाहपूर्ण थी। जीवन कटु कष्ट नहीं बल्कि मधुर लय था। संपूर्ण जीवन सहज आनंदस्वरूप था। मूलतः आहार ही औषधि स्वरूप होता था। आज हम देखें कि जिन रसों, लवणों, जैवरोधी पदार्थो का सेवन कराया जाता है वे सामान्यतया आहार हुआ करते थे। औषधि प्रयोग बीमारी की स्थिति में ही होता था और वह भी प्राकृतिक जड़ी बूटियाँ जिनमें अधिक धन नहीं लगता था किंतु धीरे-धीरे स्थिति में बदलाव आया है और हम भारतीय अपनी मूल विचारधारा, चिंतन पद्धति, आहार-विहार पद्धति को तिरस्कृत करते हुए जितना आधुनिक होने की विवेकहीन दौड़ में दौड़ रहे हैं उतने ही पाश्चात्य संस्कृति एवं जीवन पद्धति से पनपे रोगों, व्याधियों से चहुं ओर सें घिरते जा रहे हैं। आज आधुनिक जीवन पद्धति में जीने की विवशता या चाहत उसी पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता की देन है जिसने अन्य बुराइयों को भारतीय जन जीवन में घोल दिया है।

पाश्चात्य देशों की नकली संस्कृतिपूर्ण एवं तथाकथित विकसित सभ्य समाज की अप्राकृतिक दिनचर्या एवं आधुनिक जीवन पद्धति का दुष्परिणाम है कि बिना गोली, कैप्सूल, इन्जेक्शन के न तो उन लोगों का खाना

हजम होता है और न बिना नींद की गोली के नींद आती है और शरीर अनेकानेक विकारों से भरा हुआ है जिससे वे समय-समय पर जटिलतम शल्यक्रियाएं कराते रहते हैं। भारत में भी आधुनिक जीवन पद्धति ने पश्चिम के सब रोग, जीवाणु-विषाणु पहुँचा दिए हैं और हम आधुनिक दिखने और कहलाने की होड़ में अज्ञानतावश प्रकृति से दूर होते हुए, कष्टों से घिर गए हैं जो कि हमारी राष्ट्रीय गरीबी, भ्रष्टाचार जैसी विकराल समस्याओं का मूल कारण है। आज आलम यह है कि प्राचीन को दुत्कारना और आधुनिकतम को जबरदस्ती अपनाना फैशन बन गया है चाहे वह हमारे लिए कितना ही प्रतिकूल क्यों न हों? एक साधारण सी बात आप सोचें कि क्या मोबाइल के नित नए मॉडल, नवीनतम, उत्कृष्टतम तकनीक और उनके प्रति युवाओं में बढ़ रहा अत्यंत आकर्षण ही उन्हें व्यभिचार, हिंसा और अपराध की ओर नहीं धकेल रहा है? और दीर्घ अवधि मे उन्हें मस्तिष्क संबंधी एवं अन्य बीमारियों का उपहार भी मिलेगा? प्रकाशित खबरों के अनुसार केन्द्र सरकार की एक समिति ने निष्कर्ष निकाला है कि भारतवर्ष में बिकने वाले मोबाइल फोन से निकलने वाली ऊर्जा की दर 2 वाट प्रति किलोग्राम है जो कि घातक है। गर्म जलवायु का देश होने के कारण यहाँ खोपड़ी में जलन और सिरहन,पाचन, सिरदर्द, कान में घंटिया बजना, चक्कर, कमजोरी, एवं निद्रा तंत्र की बीमारियां मोबाइल प्रयोग के संभावित दुष्परिणाम हैं। मोबाइल टावरों से बृहत स्तर पर होने वाले त्वचा एवं मस्तिष्क कैंसर के प्रति स्वामी रामदेव जी भी चेतावनी देते रहते हैं। जनवरी 2011 में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान खड़गपुर में आयोजित मेलों में भिलाई से आए एक छात्र की दर्दनाक मृत्यु ने हम सबको हिला कर रख दिया। वह प्रौद्योगिकी का छात्र कानों में ईयर फोन लगाए, शायद नशे में, बंद रेलवे फाटक पार कर चलता गया और ट्रेन की चपेट में आ गया। मृत्यु अटल सत्य है उसे झुठलाया नहीं जा सकता किंतु आधुनिक जीवन पद्धति के दुष्परिणामों एवं विवेकहीन आकर्षण से युवक की आकस्मिक मृत्यु हमें सोचने पर बाध्य करती है कि हमने यह आधुनिक जीवन पद्धति क्यों अपना ली है जिसने जीवन सुविधामय तो बनाया है किन्तु हमसे बहुत कुछ छीनकर हमें व्याधिग्रस्त एवं रोगग्रस्त भी किया है।

प्राचीन भारतीय पद्धति जीवन के अधिक निकट एवं सहज रूप में विद्यमान थी जिसमें जीवन में इतनी भाग दौड़ हाय-हाय नहीं थी। आज आधुनिकता ने हमें उन सिद्धातों, नियमों, वर्जनाओं का उल्लंघन करने को उकसाया है प्राकृतिक, विकास, विज्ञान एवं मानवजीवन का संतुलन भ्रष्ट हुआ है इसलिए आज विज्ञान एवं विकास के पैरोकारों तथा सरकार को इस जीवन पद्धति के सभी पक्षों पर विश्लेषण करने की विशेष आवश्यकता है।

प्रत्येक मनुष्य सहज और प्राकृतिक रूप से निरोगी एवं कष्टरहित जीवन व्यतीत करना चाहता है और कोई भी प्राणी रोगी होना नहीं चाहता है तथा स्वस्थ रहने के आधे अधूरे मन से प्रयास भी करता है किंतु आधुनिक जीवन पद्धति में न तो वह रोगमुक्त है और न कष्ट मुक्त है। कहा गया है कि - 'सुखसंज्ञकमारोग्य विकारो दुःखमेवच' अर्थात् आरोग्य ही सुख है एवं विकार ही दुःख है। सुख और दुःख को प्राचीन काल से ही परिभाषित किया गया है कि - 'अनुकूलवेदीयं सुखं प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्' अर्थात् जिसमें अनुकूल प्रतीत होता है वह सुखकारी है जबकि प्रतिकूल प्रतीतिवाला दुःखकारी एवं वेदना-प्रतीतिकारक होता है। आधुनिकता में व्यक्ति अपने अनुकूल संबंधियो को भी कष्ट मान बैठा है , माँ-बाप, भाई-बहनों आदि आश्वस्ति कारक बंधनो को कष्ट मानता है और गंदी आदतें, बीमारी एवं रोग देने वाली वस्तुओं तथा मित्रों को सुख मानने का आत्मघाती व्यवहार करता है। मनुष्य के शरीर में बीमारी या रोग तब उत्पन्न होता है जब शरीर या मन की

प्रकृति का संतुलन बिगड जाता है, इसके लिए मन एवं शरीर की संगठनात्मक एवं रचनात्मक स्थिति का सहज ज्ञान आज की आधुनिक जीवन पद्धति नहीं देती है।

प्राचीन जीवन पद्धति में आयुर्वेद की पंरपरा का सभी को साधारण एवं सहज ज्ञान होता था और लोग प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए सुख एवं आनंद से रहते थे। सभी जानते थे कि शारीरिक संगठन रचना प्रक्रिया में तीन दोष-वात, पित्त, कफ, सात धातुएँ-रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा तीन मल -खेद, मूत्र और पुरीष- इस प्रकार ये तेरह भावरूप हैं। शरीर और मन की सभी आंतरिक एवं बाह्य चेष्टाओं का मूल इन्ही भावों में स्थापित है और इनकी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता ही खराब स्वास्थ्य अथवा विकार के मूल में कारण होती है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र तो जीवन यापन का विज्ञान ही है जो स्वस्थ रहने की सहज और प्राकृतिक विधि सिखाता है। स्वस्थ पुरूष के विषय में महर्षि सुश्रुत का विचार है कि-

'समदोषः समाग्निश्च्श्र समधातुमलक्रियः
प्रसवात्मेन्द्रिययनः स्वस्थ इत्याभिधीयते।

अर्थात् जिसके वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष सम हों, जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो, जिसकी सात धातुओं, आत्मा, दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियां) तथा मन प्रसन्न (निर्मल-अविकारी) हो वह 'स्वस्थ' कहलाता है। यह व्यवस्था स्वास्थ्य की सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं पूर्ण सार्थक परिभाषा है। स्वास्थ्य में दोषों की साम्यावस्था विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि दोषों में वैषम्य होने से ही धातु दूषित होती हैं जोकि ग्रहण किए आहार से निर्मित होती हैं। इस प्रकार प्राचीन लोक परंपरा में व्यक्ति आहार पर विशेष ध्यान देते थे। आज की आधुनिक जीवन पद्धति आहार पर सबसे कम ध्यान देती है। कभी भी, कहीं भी एवं कुछ भी खा लेना फैशन बन गया है, अखाद्यों को भी शान से खाते हैं, परिणामस्वरुप आज लगभग हर कोई किसी न किसी तरह रोगी है। भोजन एवं समय आदि के विषय में महर्षि कश्यप ने बहुत सटीक लिखा है-

'अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेनचं,
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम्,
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्रबोधनम्
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्य समाग्रिता,
विद्यादारोग्यलिंगानि निपरीते विपर्ययम्।'

अर्थात, जिस मनुष्य को यथासमय भोजन की इच्छा हो, भोजन पचे, पुरीष-मूत्र, वायु का विसर्जन समय से हो, शरीर में हल्कापन लगे, नींद आती हो, इंद्रिया स्वच्छ, निर्मल कार्यरत हों, बल हो, रंग हो और आयु हो, मन प्रसन्न हो, पाचन ठीक हो- इन सभी को आरोग्य का लक्षण जानना चाहिए। इसके विपरीत आधुनिक जीवन पद्धति इनमें से किसी भी बिंदु का ध्यान नहीं रखती- बिना इच्छा और समय के आहार, निद्रा, मैथुन करती है, कार्य का दबाब मल मूत्र वेग को लंबे समय तक रोकता है, मन सदैव चिंतित एवं खिन्न रहता है, पाचन भी सुचारू रूप से नही होता है (जंक फूड, कोक एवं गर्म-शीतल पेयों के कारण) एवं सदैव कमजोरी

और थकान लगती है- ऐसी जीवन पद्धति से जनित ही आज अधिकांश बीमारियाँ फैली हैं, जिनका 40-50 वर्ष पूर्व अस्तित्व ही नही था। आज की जीवन पद्धति में सारे कार्यों एवं चेष्टाओं का उद्देश्य शारीरिक एवं भौतिक सुख जुटाना होता जा रहा है और शरीर, मन एवं आत्मा की प्रकृति की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि यह कहना सटीक होगा कि शरीर मन, आत्मा और प्रकृति के प्रति अधिकाधिक अत्याचार ही किया जाता है। सुखी एवं निरोगी रहने के लिए महर्षि चरक का वचन निश्चय ही महत्वपूर्ण एवं अनुकरणीय है-

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः
दाता समः सत्यपरः क्षमावा नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः

अर्थात सदैव हितकारी आहार और विहार का सेवन करने वाला, हिताहित विवेक से कार्य करने वाला, विषयों में आसक्ति न रखने वाला, सत्यभाषण एवं आचरणयुक्त, क्षमाशील सेवक मनुष्य सदैव निरोगी रहता है। प्राचीन काल की इन मान्याताओं का आधुनिक जीवन पद्धति चुन-चुनकर मखौल उड़ाती है और रोगों से घिरी हुई है। निरोग रहने के विषय में महर्षि चरक ने कहा है कि-

यतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धि सत्वं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः।।

अर्थात् जिसकी बुद्धि, वाणी, कर्म स्वास्थ्य के अनुकुल हो, मन निर्मल हो, ज्ञान के लिए प्रयत्नशील हो, तप से संलग्न हो-उस पर रोगों का आक्रमण नहीं होता है। इसके विपरीत आज हम तन, मन, धन तीनों ही रूपों में दयनीय होते जा रहे हैं। हमारी जीवन पद्धति हमारे रोगों और तनावों को जन्म दे रही है। आज आवश्यकता है कि हम अपनी जीवन पद्धति पर गौर करें। बीमार होना एवं रहना दोनों ही अभिशाप हैं और हमारी राष्ट्रीय दरिद्रता के लिए उत्तरदायी है। जितना समय हम रोगों को निमंत्रण देने वाली क्रियाओं में लगाते है उससे बहुत कम समय में हम योग, प्राणायाम, आहार-विहार का सम्यक आचरण कर स्वस्थ एवं निरोग रह सकते हैं। प्राणायाम एवं आसनों से हमारा व्यक्तिगत स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है हम औरों को प्रेरित करते हुए समाज, परिवार एवं राष्ट्र के आरोग्य में भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं, आवश्यकता है मात्र जीवन पद्धति में विवेकपूर्ण बदलाव लाने की और स्वयं दृढ़ रहते हुए अहितकर आधुनिक जीवन पद्धति को त्याग कर प्राचीन जीवन पद्धति एवं संस्कृति को अपनाने की। इससे हमारा अधिक कल्याण हो सकता है। लेखक का आशय कहीं भी कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं आदमयुग की वकालत करना नही बल्कि आधुनिक सोच के साथ प्राचीन परंपराओं का सार ग्रहण कर आचार-विचार, आहार-विहार शुद्ध करने से है जिससे हम आत्मनिर्भर एवं स्वस्थ रह कर समाज और राष्ट्र के निर्माण में सकारात्मक भूमिका निभा सकें।

सुरक्षित भोजन के पाँच मंत्र

डॉ. साधना अवस्थी *

साफ–सफाई रखें:

- खाद्य पदार्थों के सम्पर्क में आने से पहले तथा भोजन पकाते समय हाथों को अच्छी तरह धोयें।
- शौच के पश्चात् ठीक प्रकार से हाथ धोयें।
- भोजन पकाने के प्रयोग में आनेवाले बर्तन तथा स्थान को ठीक प्रकार से साफ करें।
- रसोई घर तथा भोजन को कीड़े–मकोड़ों, जन्तु एवं जानवरों से सुरक्षित रखें।

यद्यपि अधिकतर सूक्ष्मजीव बीमारियां नहीं फैलाते, खतरनाक सूक्ष्मजीव व्यापक रूप से मिट्टी, पानी, जानवर एवं मनुष्यों मे पाये जाते हैं। यह सूक्ष्मजीव हाथों सूखे कपड़ों एवं बर्तनों; मुख्यतः काटने के प्रयोग में लाये जाने वाले बर्तनो में पाये जाते हैं। इनके संपर्क से सूक्ष्मजीव भोजन में फैल जाते हैं तथा दूषित भोजन से उत्पन्न बीमारियों का कारण बनते हैं।

कच्चे एवं पके हुये भोजन को अलग रखें

- कच्चा मीट, चिकन तथा समुद्री खाद्य पदार्थो को अन्य खाद्य पदार्थो से अलग रखें।
- कच्चे खाद्य पदार्थो के लिये अलग उपकरणों तथा बर्तनों का प्रयोग करें जैसे कि चाकू और काटने के लिये बोर्ड।
- खाद्य पदार्थो को बन्द डिब्बों में रखें जिससे कच्चा एवं पका हुआ भोजन संपर्क में न आ सके।

ऐसा हमें इसलिए करना चाहिए क्योंकि कच्चा भोजन मुख्यतः मीट, चिकन, समुद्री भोजन और उनके रस में खतरनाक सूक्ष्मजीव हो सकते हैं जो दूसरे खाद्य आहारों में भोजन पकाते समय एवं संग्रहित करते समय फैल सकते हैं।

भोजन अच्छी तरह से पकायें:

- भोजन को ठीक तरह से पकायें मुख्यतः मीट, चिकन एवं समुद्री खाने को।
- भोजन जैसे सूप तथा उबली हुई सब्जियों के रस को ध्यानपूर्वक 70 डिग्री तक उबालें।
- पके हुये भोजन को ठीक प्रकार से पुनः गरम करें।
- भोजन को इस प्रकार से पकाने से अधिकतर सभी खतरनाक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं। अध्ययनों के अनुसार भोजन को 70 डिग्री सेल्सियस तापमान तक पकाने से यह सुनिश्चित हो जाता है कि भोजन

* सहायक प्रोफेसर, सामुदायिक चिकित्सा विभाग, राजकीय मेडिकल कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तर प्रदेश।

खाने के लिये सुरक्षित है। खाद्य पदार्थ जैसे बिना भुना हुआ मीट, चिकन एवं मटन के बड़े टुकड़ों को पकाते समय अधिक ध्यान देने के आवश्यकता होती है।

4. खाद्य पदार्थो को सुरक्षित तापमान मे ंरखें

- पके हुये भोजन को सामान्य तापमान में दो घण्टों से अधिक न छोड़ें।
- पके हुये भोजन तथा जल्दी खराब होने वाले खाद्य पदार्थो को रेफ्रिजरेटर में रखें (5 डिग्री सेल्सियस से कम तापमान हो)।
- परोसने से पूर्व पके हुये भोजन को अत्यधिक गरम रखें (60 डिग्री सैल्सियस से अधिक तापमान हो)।
- खाद्य पदार्थो को बहुत समय के लिये फ्रिज में न रखें।
- जमे हुये खाद्य पदार्थ को सामान्य तापमान में न पिघलायें ।
- जहॉ तक सम्भव हो, खाना तुरन्त पकायें एवं खायें।

भोजन को सामान्य तापमान में रखने से सूक्ष्मजीवों की संख्या बड़ी शीघ्रता से बढ़ती हैं भोजन को 5 डिग्री सैल्सियस से कम या 60 डिग्री सैल्सियस से अधिक तापमान में रखने से सूक्ष्म जीवों में वृद्वि बहुत कम गति से होती है, या वे बिल्कुल समाप्त हो जाते है।। कुछ खतरनाक सूक्ष्मजीव 5 डिग्री सैल्सियस तापमान से कम में भी बढ़ना शुरू हो जाते हैं।

5. सुरक्षित जल तथा कच्चे पदार्थों का प्रयोग करें

- सुरक्षित जल का प्रयोग करें अन्यथा जल को सुरक्षित करने का उपाय करें ।
- ताजे और पौष्टिक खाद्य पदार्थो का चयन करें।
- सुरक्षित प्रासेस्ड खाद्य पदार्थो का ही चयन करें जैसे कि पोश्चराइज्ड दूध, फलों और सब्जियों का सेवन अच्छी तरह से धो कर करें, मुख्यतः यदि इन खाद्य पदार्थों को कच्चे खायें।
- खाद्य पदार्थो का प्रयोग उसकी समाप्ति तिथि के पश्चात न करें।

कच्चे पदार्थ, जिसमें पानी और बर्फ भी शामिल हैं हानिकारक सूक्ष्मजीव तथा रसायनों द्वारा दूषित हो सकते हैं। बासी भोजन एवं फफूँदी लगे भोजन में जहरीले रसायन पाये जाते हैं। क्योंकि ठीक प्रकार से भोजन को पकाने से अधिकतर सभी खतरनाक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं। अध्ययनों के अनुसार भोजन को 70 डिग्री सैल्सियस तापमान तक पकाने से यह सुनिश्चित हो जाता है कि भोजन खाने के लिये सुरक्षित है। खाद्य पदार्थ जैसे बिना भुना हुआ मीट, चिकन एवं मीट के बड़े टुकड़ो को पकाते समय अधिक ध्यान देने के आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ:

- प्रीवेंशन ऑफ फूडबार्न डिजीजः फाईव कीज टू सेफर फूड; वर्ल्ड हैल्थ ऑरगेनाइजेशन

गृह स्वच्छता और जन स्वास्थ्य

डॉ पूनम सिंह*

हमारे जीवन में जन स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से गृह स्वच्छता भी एक प्रमुख कारक है। सर्वविदित है कि घर, सर्व–सुविधा सम्पन्न तभी माना जाता है जब उसमें धूल, मिट्टी तथा गंदगी को हटाने की ओर ध्यान दिया जाता है । वस्तुतः गंदे पक्के मकान की अपेक्षा मिट्टी से बनी झोपड़ी में रहना अधिक स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है, निस्संदेह गन्दे घरों में पाई जाने वाली गन्दगी अनेक रोगों को जन्म देती है, जिससे स्वास्थ्य का ह्रास और जीवन में कार्यो के प्रति अरूचि होती है। अतः रोगो से बचने तथा उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु गृह स्वच्छता परमावश्यक है। सुन्दरता की दृष्टि से शरीर की सजावट और स्वास्थ्य की दृष्टि से घर की स्वच्छता वास्तव में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिस प्रकार शरीर की स्वच्छता स्वास्थ्य के लिए हितकर है ठीक उसी प्रकार स्वास्थ्य की दृष्टि से गृहस्वच्छता आवश्यक है।

स्वच्छता के सामान्य नियम

गृह स्वच्छता गृहिणी की कुशलता का परिचायक तो है ही तथापि घर की सम्पूर्ण सफाई केवल गृहिणी पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। इस कार्य के निष्पादन के लिए परिवार के सभी सदस्यों को सहयोग प्रदान करना चाहिए। एक कुशल गृहिणी को परिवार के सभी सदस्यों में स्वच्छता के प्रति रूचि उत्पन्न कराने का प्रयास निरंतर करते रहना चाहिए । गृह स्वच्छता की ओर पूर्ण रूप से ध्यान देने हेतु निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना चाहिएः

(1) **स्वच्छता की योजनाः** सफाई का कार्य करने से पूर्व कार्य योजना बना लेने से समय की बचत होती है। गृहिणी को चाहिए कि वह स्वच्छता सम्बन्धी कार्यक्रम की सूची बनायें और सफाई के कार्यो का परिवार के सदस्यों में रूचि के अनुसार विभाजन करें । इससे सफाई का स्तर ऊँचा होगा और कोई कार्य छूटेगा भी नहीं ।

(2) **परिवार का सहयोगः** गृह स्वच्छता के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए परिवार के सभी सदस्यों का सहयोग आवश्यक है। यदि परिवार का प्रत्येक सदस्य स्वच्छता सम्बन्धी अपने कर्तव्यों का पालन करता है तो घर में सफाई पूर्ण रूप से बनी रह सकती है। स्वच्छता को सुनिश्चित करने की दिशा में अच्छा होगा कि परिवार के सदस्य आपस में स्वच्छता को लेकर सहज वार्तालाप करें और अपने–अपने योगदान की चर्चा अवश्य करें कि कौन, कब, कैसे और क्या योगदान देगा। अन्यथा सभी की जिम्मेदारी किसी की जिम्मेदारी नही होगी। हाँ, सहयोग के कई स्तर हो सकते हैं, निर्भर करता है कि घर का वातावरण और सफाई की कैसी चुनौतियाँ हैं।

*सहायक प्राध्यापिका (पारिवारिक संसाधन प्रबन्धन) गृह विज्ञान महाविद्यालय, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमार गंज, फैजाबाद, उ0प्र0 ।

(3) गन्दगी कम फैलाना : प्रायः यह देखा जाता है कि परिवार के सदस्यों की असावधनी से गंदगी इतनी अधिक फैल जाती है कि गृह को स्वच्छ रखना गृहिणी के लिए असंभव सा हो जाता है उदाहरण के लिए, घर में रद्दी कागज के टुकड़े साग–सब्जी के छिलके आदि यथास्थान डालने से गन्दगी कम फैलती है और गृह स्वच्छता के लिए अधिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ता है। घर के प्रत्येक सदस्य मूल रूप से यह समझ लें कि जहाँ तक संभव हो गंदगी फैलाएं ही नही और यदि गंदगी फैलती भी है तो उसे तत्परता से उसी समय साफ करें, इससे जिम्मेदारी का बोध तो पनपेगा ही घर के अन्य सदस्यों के लिए अनुकरणीय भी होगा।

(4) साधन एवं सामग्री का ज्ञान : गृह स्वच्छता की दृष्टि से उचित साधन एवं सामग्री का उपयोग करना आवश्यक है। विभिन्न वस्तुओं की स्वच्छता के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है जैसे पीतल एवं तांबे के बर्तनों को साफ करने के लिए छनी हुई राख या मिट्टी की आवश्यकता होती है। शीशे के बर्तनों को साबुन के घोल से साफ किया जाता है। इस्पात की वस्तुओं को साफ करने हेतु पानी में सफेदी या अमोनिया का घोल प्रयोग में लाया जाता है। अतः गृह स्वच्छता के लिए साधन एवं सामग्री की ओर ध्यान देना गृहिणी का कर्तव्य है। इसके साथ ही साधन एवं सामग्री को सुरक्षित रखना भी गृहिणी का कर्तव्य है ।

गृह स्वच्छता की उचित विधि

गृह स्वच्छता के अर्न्तगत विभिन्न वस्तुओं की सफाई की उचित विधि का ज्ञान होना परमावश्यक है। जैसे अधिक धूल वाले कमरे की सफाई के समय अन्य वस्तुओं को धूल से बचाने हेतु फर्श पर सीली लकड़ी का बारीक बुरादा या चाय की भीगी हुई पत्ती डाल कर, पानी के छींटे डाल कर, झाड़ू लगाने से धूल भी नहीं उड़ती है और सफाई भी ठीक से हो जाती है। अतः इससे फर्श भी चमकने लगता है। इसी प्रकार घर की प्रत्येक वस्तु व स्थान की उचित विधि से ही सफाई करनी चाहिए ।

स्वच्छता के साधन एवं सामग्री

गृह–स्वच्छता के लिए अनेक प्रकार की सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है वर्तमान समय में सफाई के साधनों का पर्याप्त विकास हो गया है। अतः आवश्यकतानुसार सफाई करने की सामग्री को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है :–

- **पुराना कपड़ा** : सूखी सफाई तथा गीली सफाई के लिए अनेक प्रकार के कपड़े की आवश्यकता होती है सूखी सफाई के लिए मोटे कपड़े, फलालेन के कपड़े, नरम चमड़े के टुकड़े प्रयोग में लाये जाते हैं फलालेन के टुकड़े पालिश करने तथा वस्तु को चमकाने हेतु प्रयुक्त किये जाते हैं चांदी व शीशा चमकाने के लिए नरम चमड़े के टुकड़े प्रयोग में लाये जाते हैं।
- **झाड़ू व ब्रुश** : झाड़ू द्वारा धूल मिटटी तथा कूड़ा–करकट को भली भांति साफ किया जा सकता है। झाड़ू प्रायः खजूर, नारियल तथा बांस से बनायी जाती है। धूल मिटटी को खजूर व नारियल की झाड़ू से साफ किया जाता है तथा बांस की झाड़ू फर्श धोने के काम में लायी जाती है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की सफाई के लिये विभिन्न प्रकार के ब्रुश काम में लाये जाते हैं। उदाहरणार्थ – जूतों की सफाई के लिए रसोई की सफाई के लिए, फर्श की सफाई के लिए, फर्नीचर पर रोगन करने के लिए विभिन्न प्रकार के ब्रुश की आवश्यकता होती है।

- **सफाई के यंत्र** : वैज्ञानिक अनुसंधानों ने गृह स्वच्छता के लिए नवीन यंत्रों का अविष्कार किया है इसमें वैक्यूम कारपेट स्वीपर आदि प्रमुख हैं। यह यंत्र धूल व मिटटी को अपनी ओर खींचकर संलग्न थैले में एकत्रित कर लेता है। कारपेट स्वीपर एक ऐसा यंत्र है जिसमें चलने के लिए पहिये लगे होते हैं, इसमें लगे डस्ट पैन के द्वारा समस्त धूल व मिटटी एकत्रित होती है।

- **सफाई के लिए बर्तन** : गृह स्वच्छता बनाये रखने के लिये अनेक प्रकार के बर्तनों की आवश्यकता होती है, जैसे कूड़े के लिए ढक्कनदार ड्रम, जगह जगह से कूड़ा उठाने के लिए डस्ट पैन, धोने व पोंछने के लिए बाल्टी व तसला, छोटी–मोटी सफाई के लिए मग व लोटा पालिश के लिए प्याला या तश्तरी तथा सामग्री रखने के लिए डिब्बे, बोतलें आदि ।

- **सफाई की अन्य सामग्री** : गृह स्वच्छता के लिए साबुन, सोड़ा, राख, विम, स्प्रिट, अमोनिया, नमक, सफेदी तथा पैराफिन आदि सामग्री साधारण सफाई के लिए प्रयोग किये जाते हैं। दाग छुड़ाने के लिए स्प्रिट, बैंजीन व तारपीन का तेल, सिरका, क्लोरिन, नीबू हाईड्रोजन एसिड आदि प्रयोग मे लाये जाते हैं । जीव व कीटाणु का नाश करने के लिये डी0डी0टी0 मिटटी का तेल, फिनायल आदि की आवश्यकता होती है।

विभिन्न गृह कक्षों की स्वच्छता

घर के विभिन्न कक्षों में बैठक, शयनकक्ष, रसोईघर, सामान रखने का कक्ष आदि कमरे आते हैं। इन सभी कमरों की सफाई करते समय इनके फर्श, दीवारें, छत अल्मारियां व दराज, तस्वीरें, फर्नीचर, बिजली का सामान, दरवाजे व खिड़कियां तथा गृह के अन्य स्थान जैसे कोठरियां, गोदाम, बरामदे, आंगन व सीढ़ियां आदि वस्तुओं एवं स्थानों की स्वच्छता पर ध्यान देना आवश्यक है।

(1) फर्श की स्वच्छता: फर्श की स्वच्छता के अर्न्तगत ईंट के फर्श, टाइल्स के फर्श,कच्चे फर्श तथा सीमेन्ट आदि के फर्श आते हैं। ईंट के फर्शो पर झाडू लगा कर पानी से धोना चाहिए। पत्थर के फर्श की सफाई के लिए कपड़े पर थोड़ा सा पैराफिन डाल कर रगड़ना चाहिए। ऐसा करने से फर्श चमक जाता है। कच्चे फर्श को मिट्टी तथा गोबर से लीपना चाहिए। टाइल्स के फर्श की सफाई के लिए अतिरिक्त सावधानी रखनी पडती है, क्योंकि इस फर्श में थोडी सी भी गंदगी दूर से साफ दिखाई देती है। इसलिए मुलायम अथवा खुरदुरे कपडे को अच्छी तरह निचोडकर इसमें पोंछा लगाने की आवश्यकता है। सीमेंट के फर्श की सफाई के लिए इन्हें पहले झाड़न से साफ करके गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए। यदि फर्श अधिक मैला हो तो साबुन या कपड़े का सोडा प्रयोग में लाना चाहिए। फर्श स्वच्छ रहेगा तो कमरा स्वच्छ रहेगा, कीटाणु आदि कमरे में प्रवेश नहीं करेंगें जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा।

(2) दीवारो की स्वच्छता: स्वस्थ्य रहने के लिए दीवारों की स्वच्छता आवश्यक है ब्रुश की सहायता से दीवारों को झाड़ना तथा जाले हटा देना चाहिए। वर्ष में एक बार टूट फूट की मरम्मत कराकर सफेदी कराना चाहिए। दीवारें कई प्रकार कीं हो सकतीं हैं जैसे मिट्टी की दीवार, कच्चे प्लास्टर की दीवार, सीमेन्ट की दीवार एवं पक्के प्लास्टर की दीवार। कुछ घरों में सीमेन्ट की दीवार भी मिलती है, इनमें प्रायः पेंट कराया जाता है। पक्के प्लास्टर की दीवारों में बहुतायत में डिस्टेम्पर कराया जाता है। इनकी

सफाई हम समान्यतः कपडे से झटककर, मुलायम झाडू से और सीमेन्ट वाली दीवालों को गीले कपडे से पोंछ कर सफाई करते हैं।

(3) छत की स्वच्छताः छतों की सफाई पर ध्यान न देने से धूल एवं मिट्टी जमा होती रहती है जिससे बहुत सारे कीटाणु उत्पन्न होते रहते हैं और रोग फैलता है, अतः स्वस्थ रहने के लिए छतों की सफाई करना आवश्यक है। छतें भी कई प्रकार की होती हैं, खपरैल व टीन वाली छत, पक्की छत, घास–फूस की छत और पक्की छत। बर्फ गिरने वाले इलाकों में ऐंसी छतें होतीं हैं जिनसे आसानी से बर्फ गिराया जा सके। सरपट पक्की छतों में अक्सर मिट्टी, पत्ते, गर्दा आदि जमा हो जाते हैं, बरसात के पहले निश्चित रूप से इनकी सफाई होनी चाहिए, नही तो पानी भरने, मच्छर पनपने, बदबू आने और गन्दगी फैलने की पूरी संभावना होती है। खपरैल की छतों में काई और कूडाकरकट की सफाई कम से कम साल में एक बार अवश्य होनी चाहिए।

(4) अल्मारियों व दरवाजों की सफाईः अल्मारियां साफ करते समय सबसे पहले उसमें रखे सामान को बाहर निकाल लेना आवश्यक है भीतर के भागों को भली प्रकार झाड़ने तथा पोंछने के पश्चात उनमें कागज एवं कपड़ा बिछा देना चाहिए तब उनमें सामान को विधिपूर्वक क्रम से रखना चाहिए। उनमें सामान रखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि एक साथ प्रयोग में आने वाली वस्तुयें एक ही स्थान पर रखी जायें। आकार के हिसाब से भी तथा कांच, स्टील एवं अन्य सामग्रियों से बनीं वस्तुओं के रखने में सामान्य ज्ञान का प्रयोग अवश्य हो।

(5) तस्वीरों की स्वच्छताः तस्वीरों पर पड़ी धूल आदि को भली भांति झाड़कर साफ करना चाहिए । वर्ष में एक बार फ्रेम आदि को खोलकर पालिश से चमकाना चाहिए। इनकी सफाई के समय ध्यान रहे कि कहीं हमारे हाथ से छूटकर जमीन पर तो नही गिर जाएगी और टूट जाएगी। अतः भली–भाँति दीवार से उतारकर ऐसी जगह बैठकर इनकी सफाई करें जिससे इनको सुरक्षित रखा जा सके। तस्वीरों पर प्रत्येक आगन्तुक की दृष्टि निश्चित रूप से पडती है, अतः इनकी सफाई को नजर अंदाज नही किया जा सकता। वस्तुतः तस्वीरों के नीचे सफाई न करने से मकडी के जाले, दीमक और चीटियों के घर आसानी से बन जाते हैं जिनसे गंदगी फैलती है, अतएव तस्वीरों की नियमित सफाई प्रत्येक छह माह में अवश्य होनी चाहिए।

(6) फर्नीचर की स्वच्छताः फर्नीचर पर पड़ी धूल को झाडू से प्रतिदिन झाड़कर पोंछना चाहिए । समयानुसार इसकी टूट फूट की मरम्मत करा लेनी चाहिए तथा वर्ष में एक बार पालिश तथा वार्निश करना आवश्यक है। इससे फर्नीचर में चमक बनी रहती है तथा उसकी आयु भी लम्बी हो जाती है। प्रत्येक घर में फर्नीचर की अलग–अलग देखभाल की जाती है। भोजन करने वाली टेबल और कुर्सियों पर क्रमशः कवर और गद्दियाँ चढ़ाए जा सकते हैं। केन वाले फर्नीचर में धोकर, सुखाकर, उनमें पालिश कराना जरूरी है, जब भी इसकी आवश्यकता हो।

(7) बिजली के सामान की स्वच्छताः बिजली की विभिन्न वस्तुएं जैसे बल्ब रॉड, पंखें , टेबिल लैम्प, प्रैस, बिजली की केतली, रूम हीटर आदि पर पड़ी धूल को झाड़ देना चाहिए और उन पर पड़े दाग धब्बों को गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए। बल्व व ट्यूब लाईट की राड को साफ करते समय गीले परंतु पूरी तरह निचोडे हुए कपडे से साफ करें। इसी प्रकार इलेक्ट्रिक बटन और बोर्ड को बाजार में उपलब्ध केमिकल से साफ किया जा सकता है।

(8) दरवाजों एवं खिड़कियों की स्वच्छताः सर्वप्रथम दरवाजों एवं खिड़कियों को पोंछना चाहिए। खिड़कियों में लगे शीशों को समुद्रफेन एवं गीले कपड़े से साफ करना चाहिए । धातुओं द्वारा निर्मित वस्तुओं पर वर्ष में एक बार अवश्य पालिश करनी चाहिए। यदि शीशे जल्दी–जल्दी गंदे होते हों या उन पर धूल अधिक जमती हो तो छोटे से अखबार के टुकडे को गीला कर साफ करना ठीक होता अथवा बाजार में उपलब्ध स्प्रे की शीशियों से स्प्रे कर उन्हें सूखे कपडे से पोंछें। स्मरण रहे कि इस केमिकल युक्त पदार्थ से फ्रिज, फर्नीचर, पंखा एवं कपडे धोने की मशीन आदि चीजें साफ न करें जिससे उनकी पालिश चली जाय अथवा धूमिल पड जाएं, क्योंकि ऐसा हो जाने पर उन चीजों की प्राकृतिक चमक फिर कभी नही आती।

(9) दरी एवं कालीन की स्वच्छता :दरी और कालीन को सख्त ब्रुश से झाडना चाहिए। घर से बाहर ले जा कर उनको झटपट झाड़ना चाहिए। यदि संभव हो तो उल्टी ओर से लकड़ी की चोट से झाड़ना चाहिये। वैक्यूम क्लीनर तो सबसे अच्छा होता ही है। इन्हें साफ करते समय हमें मुँह पर अच्छी तरह पट्टी बाँध लेना चाहिए ताकि किसी भी हालत में हमारे फेफडों में गर्दा न जाए। सफाई के पश्चात अच्छी तरह हाथ मुँह धोएं या स्नान करें, अच्छा हो घर के अन्य सदस्य वहाँ उस प्रक्रिया के दौरान न रहें और रहें तो वे भी नाक मुँह आदि को ढँककर रखें जिससे धूल से बचाव हो सके।

(10) गृह के अन्य स्थानों की स्वच्छता : घर के कमरों के अतिरिक्त घर के अन्य भागों जैसे कोठरियों, गोदाम, बरामदें, आंगन तथा सीढ़ियों आदि को साफ करते रहना चाहिए। इनकी स्वच्छता पर प्रतिदिन विशेष ध्यान देना चाहिए। घरों में अन्यान्य ऐसे सामान होते हैं जिनकी सफाई की ओर हमारा ध्यान प्रायः कम जाता है जैसे, हाथ में बांधने वाली घडी, मिक्सी, फूड प्रोसेसर, टोस्टर, तन्दूर हीटर, दूरदर्शन, खाना बनाने की गैस, गैस सिलेण्डर, पाईप लाईन की पाइप एवं मीटर, कसरत करने के सामान तथा आर्टिकल्स, कूलर, एयर कंडीशनर आदि। इन सभी सामानों में यदि गंदगी होती है तो इसका बुरा प्रभाव घर के सभी सदस्यों पर पडे बिना नही रहता।

प्रायः यह देखा गया है कि स्वच्छता के अभाव में व्यक्ति भिन्न–भिन्न बीमारियों से पीड़ित हो जाता है, इसलिए गृहिणी को चाहिये कि गृह स्वच्छता की उचित विधियों का प्रयोग करके परिवार को स्वस्थ रखें। गृह स्वच्छता की इस पूरी प्रक्रिया में सभी परिजनों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग नितांत आवश्यक है क्योंकि सफाई से हम काफी हद तक संभावित बीमारियों को रोक सकते हैं और जीवन की गुणवत्ता को और श्रेष्ठ बना सकते हैं।

संदर्भः

- गृह प्रबन्ध – क्रान्ति पांडेय
- गृह प्रबन्ध – मंजू पाटनी
- गृह प्रबन्ध – जी0पी0 शैरी

बेटी की दशा

डॉ. साधना अवस्थी*

- 2001 की जनगणना में हर 1000 पुरूषों पर सिर्फ **933 महिलायें** हैं ।
- यूएनडीपी की रिपोर्ट के मुताबिक साल के डेमोग्राफिक मामलों में करीब **10 प्रतिशत महिलायें कम हैं ।**
- जैवकीय रूप से ताकतवर होने पर भी भारत में करीब **30,0000 अतिरिक्त कन्यायें** मर जाती है।
- भारत में हर **छठी कन्या/महिला की मृत्यु का कारण लिंग विभेद** होता है।
- प्रतिवर्ष 120 लाख जन्मी कन्याओं में से **25 प्रतिशत कन्यायें** अपना पन्द्रहवां जन्म दिन नहीं मना पाती ।
- 0–4 वर्ष आयु के शिशु मृत्यु दर में कन्याओं के मरने की दर लगभग **43 प्रतिशत** ज्यादा होती है।

हमारी यह मानव जाति जहॉ पर स्त्रियों को कभी **एक सीता के रूप में, कभी मॉ दुर्गा के रूप में, लक्ष्मी के रूप में, और कभी गौरी के रूप में पूजा जाता रहा है।** वहीं पर कुछेक विवेकहीन लोगों के द्वारा बेटियों को उनकी अल्ट्रासाउण्ड से पहचान कर उन्हें भ्रूण स्थिति में ही मारने का घिनौना कृत्य किया जा रहा है जिससे स्त्री **माता का अस्तित्व ही समाप्त हो रहा है।** स्त्री तो इस **सम्पूर्ण संसार की जननी है,** फिर उसके ही जन्म पर यह अंकुश क्यों ?

जरा इन पर विचार करें:

- **क्या** मादा भ्रूण हत्या लिंग भेद का सबसे **वीभत्स** रूप नहीं ?
- क्या देश में कन्यायों की घटती संख्या के लिये **लिंग निर्धारण** परीक्षण एंव **मादा भ्रूण हत्या** जिम्मेदार नहीं ?
- क्या मादा भ्रूण हत्या परिवार को संतुलित करने का उत्तम उपाय है?
- क्या कन्याओं के जन्म के बाद कष्ट भोगने से अच्छा है उनका जन्म से पहले ही मर जाना ?
- यदि हम इस समस्या पर **यूं ही ऑखें मूँदे रहे** तो आने वाले समय में सम्पूर्ण समाज का स्वरूप क्या होगा ?
- क्या भविष्य में हमारे सभी **बेटों के विवाह के लिए वधू** मिल पायेंगी ?
- क्या कन्याओं की गिरती संख्या उनके सामाजिक स्तर में सुधार कर सकेगी ?
- क्या मादा भ्रूण हत्या के खिलाफ कानून, बिना जन सहयोग के सफल हो सकेगा ?

* सहायक प्रोफेसर, सामुदायिक चिकित्सा विभाग, राजकीय मेडिकल कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तर प्रदेश ।

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर हम सभी को मिलजुल कर ढूंढने होंगें।

मादा भ्रूण हत्या और महिलाओं का प्रजनन स्वास्थ्यः चिकित्सकीय दृष्टिकोण

वर्तमान परिवेश में लिंग निर्धारण के लिये सबसे ज्यादा प्रयोग की जाने वाली विधि अल्ट्रासाउण्ड परीक्षण है, यह विधि गर्भ के तीन माह पूरे होने के बाद चौथे माह में लिंग निर्धारण के लिए प्रयोग की जाती है। इस प्रकार मादा लिंग का पता लगते ही गर्भपात कराया जाता है।

गर्भ की इस बडी अवस्था में गर्भपात कराए जाने से उत्पन्न समस्यायें

- अत्यधिक रक्तस्राव – एनीमिया
- गम्भीर पैलविक संक्रमण जो बांझपन, दीर्घकालीन कमरदर्द ,पेडू में दर्द, प्रजनन मार्ग संक्रमण , योनि संक्रमण , बच्चेदानी के मुख पर जरक/घाव– जो कि आम तौर पर ल्यूकोरिया नाम से पायी जाने वाली बीमारी है जिसमें योनि से अत्यधिक पानी या श्लेष्मायुक्त स्राव होता है – बिना उपचार के पडे ऐसे घाव बच्चे दानी के मुख पर कैंसर के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं।
- बच्चेदानी में अन्दरूनी चोट जिसकी वजह से कभी–कभी महिला की मृत्यु का खतरा रहता है या बड़े आपरेशन की आवश्यकता पड़ सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं मादा भ्रूण हत्या के लिए किए जाने वाले गर्भपात किस प्रकार महिलाओं के स्वास्थ्य का हनन कर रहे हैं।

क्या कहते हैं हमारे ग्रन्थः धार्मिक दृष्टिकोण

हमारे धार्मिक ग्रन्थ जैसे **भागवद्– मानस पुराण** जो कि वैज्ञानिक कसौटी पर खरे उतरे हैं, उनमें भी भ्रूण हत्या को **जघन्य अपराध** माना गया है। आज जब हम एक ओर पूजा पाठ और धार्मिक होने की प्रवृत्तियां रखते हैं वहीं दूसरी ओर ऐसे विभिन्न उपलब्ध साहित्य की अवहेलना कर बैठते हैं और इस अवहेलना का कारण कई बार हमारी अज्ञानता होती है और कई बार जानबूझकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ऑख बंद कर लेते हैं।

''यत्पापं ब्रम्हात्याया द्विगुण गर्भपातने,
प्रायश्चितं न तस्यास्ति तस्यास्त्माओं विधीयते''

अर्थात् ब्रह्महत्या से जो **पाप** लगता है उससे **दुगना पाप गर्भपात करने से लगता है** गर्भपात में भी विशेष रूप से **गर्भ में स्थित कन्या** को गिरा देते हैं, इससे बढ़कर भयंकर पाप और क्या होगा?

क्या आप जानते हैं?

गर्भ में लड़का या लड़की का होना पिता के शुक्राणु में मौजूद गुणसूत्र पर निर्भर है और पुरूष भ्रूण का निर्धारण गुणसूत्र से होता है जो केवल पिता में ही होता है। इसलिए पुत्र न होने की स्थिति में मां को दोषी ठहराना **बिल्कुल गलत** एवं अन्यायपूर्ण है।

हमारा कानून (प्री–नेटल डायगनोस्टिक टेकनीक अधिनियम) जन्म पूर्व लिंग निर्धारण एवं मादा भ्रूण हत्या को रोकता है। इस अधिनियम के अध्याय 7 में अपराध हेतु दण्ड का प्रावधान है।

- इस अपराध में अधिकतम 3 वर्ष का कारावास और अधिकतम 10,000 रूपये के जुर्माने का प्रावधान है।
- यदि चिकित्सक, जेनेटिस्ट, प्रसूति विशेषज्ञ या पंजीकृत चिकित्सक जो भी इस अधिनियम का उल्लंघन करता है, उसको 3 से 5 वर्ष का कारागार और 10 हजार से 50 हजार तक का जुर्माना हो सकता है तथा पंजीकरण भी निरस्त होने का प्रावधान है।

प्रकृति गैर बराबरी की बात नहीं करती सिर्फ **प्रजनन** के लिये औरत और मर्द को **अलग–अलग अंग** देती है उससे ज्यादा कुछ नहीं। भेदभाव, उॅच–नीच, अलग तौर तरीके इन्सान या समाज, यानि हम सब बनाते हैं।

सन्दर्भ:

(1) जनगणना 2001
(2) प्री–नेटल डायगनोस्टिक टेकनीक अधिनियम.––१९९४
(3) वात्सल्यः गैर सरकारी संगठन की 'महिला गर्भपात' कांफ्रेंस के आधार पर, आगरा 2001
(4) मनु स्मृति २/१४५

बाल श्रम : सामाजिक सरोकार

ओम कुमार कर्ण *

बाल्यावस्था ऐसी अवस्था होती है जिसमें मनुष्य सभी प्रकार की चिंताओं से मुक्त होता है। यह अवस्था उत्साह, उमंग तथा सुनहरे सपनों से भरी होती है। इस अवस्था में मनुष्य सामान्यतः ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, भेद-भाव आदि दुर्गुणों से मुक्त होता है। बाल्यकाल से ही मनुष्य की विकास यात्रा प्रारंभ हो जाती है। बच्चे समाज, राष्ट्र तथा विश्व की प्रगति के आधार होते हैं। पूरे विश्व का भविष्य इनके कंधों पर टिका होता है। किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति तथा विकास का भविष्य वहाँ के बच्चों के आधारभूत एवं सर्वांगीण विकास पर निर्भर करता है। इसलिए बच्चों को देश का कर्णधार कहा जाता है। बच्चों की समुचित देखभाल तथा विकास पर ही राष्ट्र की प्रगति निर्भर होती है। जिस प्रकार किसी वृक्ष के पौधे की देखभाल जितनी अच्छी तरह की जाती है वह वृक्ष उतना ही विशाल होता है और उससे उतने ही अच्छे फल प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार बच्चों की देखभाल जितनी अच्छी तरह से की जाएगी, देश का भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल होगा। परंतु विडम्बना यह है कि आज भी बच्चों की एक बड़ी संख्या जीवन की विषमताओं तथा विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिए विवश हैं । अनेक बाल श्रमिक ऐसी परिस्थितियों में कार्यरत हैं, जो स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। इस उम्र में उनके शरीर पर कुप्रभाव का प्रकोप बढ़ता ही चला जाता है और वे कई बार स्थाई अपंगता का शिकार हो जाते हैं। उनके जीवन में न तो बाल्यावस्था का उत्साह तथा उमंग है न ही सुनहरे सपने देखने के अवसर उपलब्ध हैं। इन्हें बाल श्रम की आग में इस प्रकार झोंक दिया गया है कि उससे निकलना असहज है। जिन पुष्प की भाँति कोमल हाथों में मुलायम खिलौने, पेंसिल तथा कलम होने चाहिए उन हाथों में कठोर हथौड़े तथा अन्य उपकरण थमा दिए गए हैं और वे कोमल हाथ इनका भार सहने के लिए विवश हैं।

अब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस समाज या राष्ट्र के बच्चे ही विभिन्न प्रकार की समस्याओं से घिरे हों उस समाज/राष्ट्र का भविष्य कैसा होगा? बाल श्रम की समस्या का सामना कर रहे बच्चे किस प्रकार समाज और राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान दे सकेंगे। वर्तमान परिदृश्य में आर्थिक, सामाजिक तथा विभिन्न तरह की विवशताओं के कारण हजारों बच्चे स्कूल की चौखट भी नहीं पार कर पाते हैं और कई बच्चों को अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ने के लिए विवश होना पड़ता है। शिक्षा के अभाव में इनका मानसिक और बौद्धिक विकास नहीं हो पाता है। बच्चों का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व न केवल उसके माता-पिता का है बल्कि पूरे समाज का है। बचपन मनुष्य की ऐसी अवस्था होती है जिसमें उसे सबसे अधिक सहायता, देखभाल, प्रेम, सहानुभूति और सुरक्षा की आवश्यकता होती है। जिन व्यक्तियों का बचपन सुखी, संतुष्ट और अच्छी शिक्षा-दीक्षा के साथ गुजरता है उनका व्यक्तित्व भी अच्छा होता है और वे एक विकासशील, सशक्त और उन्नत समाज की संरचना में महत्वपूर्ण सहयोग देते हैं।

* कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली.

बाल श्रम के कारण

बाल श्रम के कई आर्थिक तथा सामाजिक कारण हैं जिनमें गरीबी, अशिक्षा, जनसंख्या विस्फोट, सस्ता श्रम, उपलब्ध कानूनों का लागू नहीं होना, बच्चों को स्कूल भेजने के प्रति माता-पिता की अनिच्छा इत्यादि प्रमुख हैं। बाल-श्रम के लिए गरीबी सबसे पहला कारण है। वस्तुतः गरीबी से ही अन्यान्य समस्याओं का प्रादुर्भाव होता है। हमारे समाज में आर्थिक विविधता इतनी अधिक है कि एक ओर जहाँ कुछ लोगों को संपत्ति रखने की जगह नही है वहीं दूसरी ओर कुछ लोग भोजन के लिए भी तरसते हैं। यहाँ शान-शौकत तथा मनोरंजन के लिए पाले जानेवाले कुत्ते-बिल्लियों को जहाँ दूध-बिस्किट तथा ऐशो-आराम के साधन उपलब्ध हैं वहीं कई ऐसे बच्चे हैं जिन्हें पेट भर रोटी भी नसीब नहीं होती । ऐसी परिस्थिति में अपना पेट भरने के लिए उन्हें कृषि, उद्योग, व्यापार, होटलों/ढ़ाबों तथा घरेलू धंधों में श्रम करने के लिए विवश होना पड़ता है। पेट की आग बुझाने के लिए माता-पिता अपने जिगर के टुकड़े का मोह त्यागकर उन्हें खदानों, फैक्ट्रियों, उद्योगों, ईंट-भट्ठों तथा घरेलू कार्यों के लिए भेज देते हैं। हालांकि कुछ माता-पिता ऐसे भी हैं जो निरक्षरता के कारण तथा पैसे की लालच में अपने बच्चे को श्रम के लिए मजबूर करते हैं।

बच्चों को रोजगार में इसलिए भी लगाया जाता है, क्योंकि उनका आसानी से शोषण किया जा सकता है। इनके मालिकों द्वारा बलपूर्वक इनसे परिश्रमसाध्य कार्य करवाया जाता है और इसके लिए इन्हें न्यूनतम पारिश्रमिक दिया जाता है। बच्चों की खरीद, शोषण तथा दुकानों, खदानों, कल-कारखानों, उद्योंगों, ईंट-भट्ठों तथा घरेलू कार्यों में जबरन मजदूरी तथा शारीरिक दुर्व्यवहार की अनेक घटनाएँ समाचार पत्रों एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में देखने को मिलती हैं। कामगार परिवारों की 'जितने हाथ, उतने काम' वाली मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।

भारत में बाल श्रम के खिलाफ कानून

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत की विभिन्न धाराओं में उल्लेख किया गया है कि -

- 14 वर्ष से कम उम्र का कोई भी बच्चा फैक्ट्री या खदान में काम करने के लिए नियुक्त नहीं किया जायेगा और न ही किसी अन्य खतरनाक नियोजन में नियुक्त किया जाएगा।
- राज्य अपनी नीतियाँ इस तरह निर्धारित करेंगे कि श्रमिकों, पुरूषों और महिलाओं का स्वास्थ्य तथा उनकी क्षमता सुरक्षित रह सके और कम उम्र के बच्चों का शोषण न हो तथा वे अपनी उम्र व शक्ति के प्रतिकूल काम में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रवेश करें।
- बच्चों को स्वस्थ तरीके से स्वतंत्र व सम्मानजनक स्थिति में विकास के अवसर हेतु सुविधाएँ दी जायेंगी और बचपन व जवानी को नैतिक व भौतिक दुरूपयोग से बचाया जायेगा।
- संविधान लागू होने के 10 साल के भीतर राज्य 14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को मुफ्त व

अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेंगे।

- बाल श्रम एक ऐसा विषय है, जिस पर संघीय व राज्य सरकारें, दोनों कानून बना सकती है। दोनों स्तरों पर कई कानून बनाये भी गये हैं।

प्रमुख राष्ट्रीय कानूनी विकास

- **बाल श्रम (निषेध व नियमन) कानून 1986** - यह कानून 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को 13 पेशा और 57 प्रक्रियाओं में, जिन्हें बच्चों के जीवन और स्वास्थ्य के लिए अहितकर माना गया है, नियोजन को निषिद्ध करता है।
- **फैक्ट्री कानून 1948** - यह कानून 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के नियोजन को निषिद्ध करता है। 15 से 18 वर्ष तक के बच्चों के लिए हर दिन साढ़े चार घंटे की कार्यावधि तय की गयी है और रात में उनके काम करने पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- **न्यायिक हस्तक्षेप** - भारत में बाल श्रम के खिलाफ कार्रवाई में महत्वपूर्ण न्यायिक हस्तक्षेप 1996 में उच्चतम न्यायालय के उस फैसले से आया जिसमें संघीय और राज्य सरकारों को खतरनाक प्रक्रियाओं और पेशों में काम करनेवाले बच्चों की पहचान करने, उन्हें काम से हटाने और उन्हें गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया गया था। न्यायालय ने यह भी आदेश दिया था कि एक बाल श्रम पुनर्वास सह कल्याण कोष की स्थापना की जाये, जिसमें बाल श्रम कानून का उल्लंघन करने वाले नियोक्ताओं के अंशदान का उपयोग हो।

उपरोक्त कानून के अलावा सरकार द्वारा बाल श्रम को समाप्त करने के लिए समय -समय पर अनेक नीतियाँ बनायी गई हैं। परन्तु सभी कानूनों, सरकारी नीतियों तथा संस्थागत प्रयासों के बावजूद भी किसी कस्बे, शहर, महानगर में 8-10 वर्ष के बच्चों को चाय की दुकानों, फुटपाथों तथा सम्पन्न व्यक्तियों के घरों में काम करते हुए देखा जा सकता है। इसके चाहे जो भी कारण हों, परंतु इस उम्र में काम करना बच्चों के स्वास्थ्य, कल्याण तथा विकास के लिए हानिकारक है।

बाल मजदूरी के लिए किये जाने वाले विभिन्न प्रयासों के अतिरिक्त हमारे समाज की आर्थिक विविधता को दूर करना आवश्यक है। इसके लिए एक ऐसे समाज का निर्माण करना आवश्यक है जिसमें सभी को भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा उपलब्ध हो। इसके साथ ही बाल श्रम उन्मूलन के प्रति हम सभी को जागरूक होना होगा। सामूहिक तथा सामाजिक प्रयासों के पश्चात् ही बाल श्रम की समस्या से निजात पाना संभव है। जब दुनिया के अनेक विकसित देशों में बाल श्रम की इतिश्री हो सकती है तो भारत में क्यों नहीं। जरूरत है तो सिर्फ सामाजिक मुहिम चलाने की, और इसके लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति, सामुदायिक भागीदारी और कानूनों के अनुपालन को सुनिश्चित करना आवश्यक है।

संदर्भः

1. बेवसाइट www.indg.in.

स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में चिन्ता का सकारात्मक स्वरूप

डॉ. रीता अवस्थी*

प्रायः समझा जाता है कि चिता तो मरे हुए को जलाती है लेकिन चिंता तो जीवित रहते ही व्यक्ति को जला डालती है। आधुनिक मनोचिकित्सक चिन्ता को इतना अधिक घातक नहीं मानते। अनेक अध्ययनों के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुॅचे हैं कि कतिपय चिंता तो सफलता प्राप्त करने का एक साधन है। जैसे जीवित रहने के लिये शरीर के तापमान को बनाये रखने हेतु रक्तचाप का बना रहना जरूरी है, उसी तरह चिंता की एक निश्चित मात्रा भी मनुष्य के लिये जरूरी है, यह न केवल जिन्दा रहने बल्कि व्यावहारिक जगत में निरंतर विकास करने और आगे बढ़ने के लिये भी आवश्यक है। यह ध्यान देने योग्य है कि चिंता की कितनी मात्रा हो और व्यक्ति विशेष उसका कैसे प्रावधान करता है।

वस्तुतः चिन्ता मनुष्य को सक्रिय बनाये रखती है और उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में निरंतर बोध कराती रहती है रक्तचाप की भाँति जीवित रहने के लिये उसकी एक निश्चित सीमा या स्तर पर बना रहना बहुत जरूरी है। किन्तु निस्संदेह अधिक चिन्ता प्राणघातक हो सकती है। चिंता की अधिकता का दुष्प्रभाव सबसे पहले स्वास्थ्य पर पडता है, प्रारंभ में मानसिक स्तर पर और फिर शारीरिक स्तर पर। अपनी निम्नतर स्थिति में चिंता मायावी स्वरूप में होती है जो कि एक अदृश्य, निष्ठुर और शवभक्षी की तरह–आपके दिमाग के हर कोने में विचरण करती है, और जो भी मिल जाए उस पर जिन्दा रहती है। वह अनुमति की व्यावहारिक प्रक्रिया को पूरा किये बिना एक अनचाही वस्तु की तरह से आकर लद जाती है और जिन्दगी की अनेक असफलताओं कुंठाओं, नकारात्मक संभावनाओं पर राज करती है वह जीवन के आनंद, सुख, पारिवारिक खुशियों, उपलब्धियों तथा सकारात्मक सोच को नगण्य बनाकर मिटाती चलती है। क्योंकि हम चिंता के अत्यधिक बोझ से एक डरी हुई मानसिकता के बीच जीने लगते है कि पता नहीं कब, क्या हो जाए? सामान्य रूप से देखा गया है कि जो लोग बहुत ज्यादा चिन्ता करते है वे दुख और कष्ट ही उठाते हैं, उनके मानसिक स्वास्थ्य पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। अपनी कड़ी मेहनत, सरल व विनोद पूर्ण स्वभाव, हंसमुख व्यक्तित्व तथा आत्म–चेतना के बावजूद वे यदि कुछ नहीं पाते हैं तो बस, मन की शांति।

संस्कृत की एक उक्ति में चिंता को चिता के समान कहा गया है। चिंता आश्चर्यजनक रूप से बड़ी आम विचारधारा है। एक छोटे से छोटे समूह में खड़े व्यक्तियों में से एक व्यक्ति तो चिंता के कारण होने वाले मानसिक आघात से ग्रस्त होता ही है, यहां तक कि वे लोग भी जो अच्छी जिंदगी बसर करते हैं, कभी कभी अत्यधिक चिंता के शिकार हो जाते हैं। इन सब बातों के बावजूद हमें समझना चाहिए कि चिंता कोई लाइलाज समस्या नहीं, अधिकांश लोग तो यह जानते ही नहीं कि अपने अतीत के बीते हुए वर्षों में हमने चिंता के बारे में क्या जानकारी प्राप्त की है।

*सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, नवयुग कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दैनिक जीवन में घटने वालीं अन्यान्य घटनायें, जिनका बहुत ज्यादा महत्व न हो फिर भी वे चिंता का कारण बन सकतीं हैं। एक ही घटना अलग–अलग व्यक्तियों को विभिन्न रूप में प्रभावित कर चिंता के रूप में अभिव्यक्त हो सकती है, जैसे कि तेज बारिश कभी भी किसी भी रूप में चिंता का हमला कर सकती है, उसी प्रकार कभी आंधी–तूफान के साथ, कभी वर्षा के रूप में तो कभी थोड़ी देर की झड़ी की तरह चिंता भी अपने शिकार पर तरह–तरह से हमला करती है। ठीक इसके विपरीत विपदाओं का अंबार भी जैसे जन–धन की हानि, निकट संबंधियों की मृत्यु, भयंकर शारीरिक पीडा भी कई व्यक्तियों को विचलित नही करती।

आज सभी आयुवर्ग के लोग बहुतायत में यह जान चुके हैं कि चिन्ता के विविध रूप और प्रकार क्या है, और कौन सी ऐसी बातें हैं जो चिंता पैदा करती हैं। यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चिंता लज्जा, दुख, अवसाद, व्याकुलता, बेचैनी या तनाव के कारण अस्त–व्यस्तता की समाप्ति के बाद जन्म लेती है। आज के इस वैज्ञानिक युग में हर चिंता का उपचार संभव है व संज्ञानात्मक चिकित्सा के अंतर्गत दवाईयों और व्यायाम से उसका इलाज किया जा सकता है। विश्लेषण करें तो पाएंगे कि चिंता, डर अथवा भय का एक विशेष रूप है। छोटा सा डर हमारे दिमाग के उस हिस्से में बड़ी तेजी से पहुँच जाता है जिसे हम 'सेरेब्रल कारटेक्स' कहते हैं। और उसी में हम अपनी आशंकाओं, इच्छाओं, अपेक्षाओं, भावनाएं, कल्पना, यादें आदि जोड़ देते हैं। मूलतः चिन्ता हमेशा अनेक रूप धरना जानती है। जिसमें अपने आप कुछ न कर पाने की स्थिति या भावना उपजती है। साथ ही असहायता का डर भी लगता है। हम सभी में से अधिकतर लोग मन की चिंता का कारण बाह्य वातारण में ढूंढते हैं और यह मानते हैं कि जीवन के अनुभवों ने ही उसे जन्म दिया है। जो लोग चिंतित रहने का अनुभव रखते हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि दुनिया में सब कुछ ठीक, व्यवस्थित होने पर भी चिंता उभरकर आ ही जाती है।

एक चिंताशील व्यक्ति हर वक्त चिंता में डूबा रहता है, उसे यह पता ही नहीं चलता कि वह कब आकस्मिक आवेग में फंस गया, जिसकी जकड़न और विचारों की पकड़ न तो उसे चैन लेने देती है और न ही अच्छे विचारों को सोचने, समझने अथवा स्वीकार करने देती है। आज सामाजिक परिवेश, महत्वाकांक्षा व व्यवस्थाओं के बीच यह भली–भांति समझ में आने लगा है कि चिंतित व्यक्ति की आत्मा की अपेक्षा उसके मन अथवा तंत्रिका तंत्र में क्या घटित हो रहा है। हममें से कुछ तो जन्मजात् चिंतनशील, मननशील होते हैं। हमारे शरीर के विभिन्न हिस्सों के तंत्रिका तंत्र, प्रणालियों आदि का संवेदना स्तर भिन्न–भिन्न है जैसे –हमारा रक्त चाप, सांस लेने की गति, नाड़ी आदि की गति ज्यादा है जबकि हम दिमाग के स्वाभाविक तनाव नियंत्रण के प्रति कुछ कम संवेदनशील होते हैं। शरीर के ये नियंत्रक न्यूरो ट्रांसमीटर के द्वारा सक्रिय होते हैं। आधुनिक जानकारी के आधार पर हम चिंतित व्यक्तियों को उसकी चिंता के लिये दोष नहीं दे सकते। आज नयी खोज यह भी है कि मस्तिष्क लचीला और आवश्यकतानुसार ढल जाने वाला होता है। हम दिमाग को दिशा–निर्देश तो दे सकते हैं, प्रशिक्षित कर सकते हैं, उसे आश्वस्त कर सकते हैं और बदल भी सकते हैं किन्तु हम नया दिमाग नहीं लगा सकते।

देखा गया है कि अधिकांश व्यक्ति विश्वासघात अथवा विश्वासहीनता के कारण चिंतामग्न रहते हैं, ऐसे लोग अपने मन की बात सच्चाई से बतायें तो उनकी समस्या का मूल कारण जाना जा सकता है। इसी क्रम में अपनी जिंदगी के कठिनतम समय में एक महिला मुझसे मिलीं। वह उच्च शिक्षित, सफल चिकित्सक और दो स्वस्थ व सुंदर बच्चों की माँ थी। अपने जीवन की सफलतम व खुशहाल उपलब्धियों के बावजूद वे

बेहद भयभीत थीं। यद्यपि इस भय का कोई ठोस आधार नहीं था फिर भी उन्हें अपने पेशे से संबंधित भ्रष्ट आचरण के कारण भय बना रहता था। उनकी जीवन कहानी को विस्तार से जानने पर ज्ञात हुआ कि जिस भय की शिकार वह थी उससे संबंधित एक मुकदमा उनके खिलाफ दायर किया गया था। हालांकि वह मुकदमा जीत गईं लेकिन उनकी मानसिक शांति छिन गयी, दुनिया वालों व अपनों पर से उनका विश्वास लगभग उठ गया था, हमने उन्हें अपने दिमाग को शांत रखने तथा ठंडा रखने की सलाह दी और दिमाग को फिर से प्रशिक्षित करने का तरीका समझाया। लेकिन यहॉ सबसे महत्वपूर्ण पहलू है 'आत्म–चिकित्सा' अर्थात् स्वयं अपनी सोच में बदलाव करना। यद्यपि जीवन असुरक्षित है लेकिन अधिकांश लोग इसलिये पीड़ित होते है कि वे नहीं जानते कि कहां किससे सहारा और समर्थन लिया जाए। हमारे सार्थक संबंधों, पारस्परिक सम्पर्कों में ही हमारे भावनात्मक स्वास्थ्य का राज छिपा है। चिंता के खिलाफ वही हमारा बचाव है।

चिंता कभी–कभी एक नकारात्मक संभावना से शुरू होती है। मात्र एक छोटे से प्रश्न से 'यदि ऐसा हुआ तो?' या 'यदि ऐसा नहीं हुआ तो?' और इनसे निपटने के लिये लोग कभी–कभी अंधविश्वासी बन जाते हैं। अपने आपको किसी घटना, देवी–देवताओं के प्रकोप से जोडने की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः उनके मस्तिष्क में यह भाव घर कर जाता है कि वे सक्षम नहीं हैं और उनके प्रयास निष्फल हो जायेंगें, अर्थात चिंतित व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण सोच को अस्थिरता और डांवाडोल स्थिति में ला खडा करता है।

वर्तमान में चिंता निवारण के लिये अनेक तरह के उपचार एवं औषधियां हैं, लेकिन कभी–कभी उनकी जरूरत ही नहीं पड़ती। व्यक्ति सबसे पहले अपने आपको और अपनी चिंता के कारण को पहचानना सीखे कि क्या वह आशंका, दुर्भावना, अवसाद अथवा किसी आघात के कारण है। इस बारे में स्वयं जितना अधिक खोज सकते हैं, स्वयं खोजिये। फिर उससे निपटने के लिये कार्य योजना बनाइये। चिंता दूर करने का सबसे कारगर और दमदार उपाय है, उसे और अधिक उजागर करना। चिंता वस्तुतः कोई कदम नहीं उठाने देती और बाध्यतामूलक स्थिति उत्पन्न कर देती है। इसीलिये चिंता करने वाले अधिकांश लोगों में कभी–कभी अपने आप से बातें करने की आदत हो जाती है किन्तु जब भी व्यक्ति अपने–आप से ऐसी निराशावादी बातें करें उसे तभी अपना ध्यान कहीं और बंटाने की कोशिश करनी चाहिए।

चिंता से मुक्ति पाने, इसके प्रभाव को कम करने अथवा चिंता मुक्त होने का सबसे सरल और व्यावहारिक उपाय है, अपने आप को व्यस्त रखना और रूचि के कार्यों में लगाना। परिवर्तन के लिए गुनगुनाएं, शरीर और मन को सक्रिय करें, तत्परता से स्थान बदलें, वार्तालाप में मधुरता और ताजगी लाने का प्रयास करें अथवा, कुछ सकारात्मक सोंचे। अपने आप उठने वाले विचारों पर ध्यान दें, खासतौर पर तब, जब आप बुरी खबर सुनते हैं, या किसी प्रकार की असुरक्षा महसूस करते हैं। ऐसे में अपनी चिंताओं पर केवल सोचते मत रहिए। उन्हें एक कागज पर लिख डालिये। आप पाएंगे कि आपकी अधिकांश चिंताएं अति रंजित और बेबुनियाद हैं। आप उन्हें कितना बढ़ा–चढ़ाकर सोच रहे थे और अन्ततोगत्वा उनका तार्किक विकल्प ढूंढिए। चिंताओं को जन्म देने वाले नकारात्मक विचारों से बचने के लिये संगीत सुनें एवं अपनी रूचि के अनुकूल वाद्ययंत्र अथवा गीत आदि में अपने आप को शामिल करें, मनोरंजन को दैनिक जीवन का हिस्सा बनायें, खेलकूद में हिस्सा लें, अपने इष्ट–मित्र, बन्धु–वांधव तथा हंसमुख एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाले प्रियजनों से बातचीत करें। सच मानिए चिंताए लाभ भी पहुॅचा सकती हैं बशर्ते उनके प्रति आपका दृष्टिकोण सकारात्मक हो। जैसे–व्यायाम दिमाग को शांत रखता है और व्यर्थ की, लाभहीन चिंताओं को समाप्त करता है। चिंता निवारक उपायों की खोज के लिये सृजनषील बनिये। ठोस योजना बनाये, अनावश्यक चिंताओं को बढ़ने से

पहले खत्म कर दें। सामान्यतः चिंताएं समस्याओं से भी उपजती है या दोनों का चोली–दामन का साथ कहा जा सकता है। अपेक्षित चिंता और बोझ बनी नुकसानदेह चिंता के मध्य एक हल्की सी विभाजन रेखा है। आप स्वयं सहज ही समझ पायेंगे कि कितनी मात्रा में चिंता आपको सक्रिय रखेगी। अतः समस्या का तार्किक ढंग से आकलन करना चाहिए। बहुत से विचारक अंगीकार करते हैं कि चिंता सफलता की कुंजी है। सफल लोगों को तो वह अन्य लोगों से आगे ले जाती है। एक विजयी विजेता व्यक्ति के लिये चिंता तो ठोस कदम उठाने, लाभप्रद योजना बनाने का कारण बन जाती है। वे भय को अपने लिये उसी तरह इस्तेमाल करते हैं जैसे पेट्रोल को गाड़ी के लिये। यहॉ भय उर्जा है जो गाड़ी को बढ़ाने व दौड़ाने में ईधन का काम करता है। ऐसे ही वायलिन एक वाद्य है, जिसके तारों में कमानी गाड़कर स्वर निकाले जाते हैं, जो मधुर, कर्कष अथवा करूण आदि हो सकते हैं। यहॉ कमानी जीवन का अनुभव है और तार हमारा जैविक ढांचा। इन तारों पर कमानी का आवागमन जिंदगी का संगीत रचता है। यह हम पर निर्भर है कि हम किस तरह के संगीत की रचना करना व सुनना चाहते हैं।

आप कैसा सोचते हैं, कैसा अनुभव करते हैं? यह आपके व्यवहार पर निर्भर करता है। क्योंकि हर व्यक्ति की मानसिक संरचना अलग–अलग होती है। आपके पास चिंता है या उत्साह, यह हमेशा ध्यान रखें कि आप अपना भविष्य नहीं, बल्कि अपनी आदतें बनाते हैं। लेकिन आपकी आदतें आपका भविष्य जरूर बनाती है। उसी तरह जो पहले आपने किया, वह अतीत था। जो अब कर रहे हैं, वह भविष्य के लिये है। इसलिये अतीत को भूलकर भविष्य के बारे में सोचिये। आपको अपने आस–पास बहुत से ऐसे लोग मिल जाएंगें जो केवल अतीत की ही बातें करेंगें, बहुधा वयस्क नर–नारी। नई पीढी या युवक–युवतियाँ ऐसा कम करते हैं, वे बातचीत में भी भविष्य के सपने बुनते हैं और हर समय आगामी कार्ययोजना को अपने वार्तालाप में मुख्य स्थान देते हैं। अपवादों को छोडकर सभी वयस्क क्रियाशील होते हैं और भविष्य को केन्द्र बिन्दु मानकर उस तक पहुँचने का प्रयास करते हैं फलस्वरूप वे चिंताग्रस्त कम ही हो पाते हैं। व्यक्ति अपनी चिंताओं पर अधिक समय–ध्यान न लगाकर उसकी अपेक्षा जीवन में आने वाली छोटी से छोटी खुशियों की कल्पना करें। मेडिटेशन अथवा दूसरी रुचियों को बढ़ावा देकर भी आप खुश रह सकते हैं। इसके अलावा आप अपनी कुछ आदतों व तरीकों में बदलाव लाकर भी अपनी चिंता परेशानी को दूर कर सकते हैं।

कहना न होगा कि मनुष्य के जीवन में हंसी सबसे कीमती चीज होती है जिसके पास हंसी नहीं मानो उसकी जिंदगी में कुछ भी नहीं है। अगर अपनी जिंदगी को चिंतामुक्त और खुशहाल बनाना है तो हंसी को अपने जीवन में जगह दें। अंत में जिंदगी को खुशियों से भरना हमारी सोच पर निर्भर करता है। इसलिये सही दिनचर्या को अपनाएं और स्वस्थ एवं चिंतामुक्त रहें। निरंतर अच्छी सोच का अभ्यास इस दिशा में सहायक सिद्ध होगा, निरंतर अभ्यास से विकसित स्वस्थ जीवन–शैली से चिंता का केवल सकारात्मक स्वरूप ही हमारे पास रहेगा।

————————

संदर्भः

1. मनौवैज्ञानिक चिकित्सा एवं लेख–पत्रिका – 2002 अंक
2. पीपुल्स समाचार, जबलपुर, 31 जनवरी 2011
3. हिन्दुस्तान टाईम्स प्रकाशन, मासिक पृष्ठ 68
4. व्यावहारिक मनोविज्ञान, पाठक
5. दैनिक समाचार पत्र अंक, 21 दिसम्बर 2010
6. शिक्षा मनोविज्ञान कादम्बनी

सड़क दुर्घटनायें: समस्या और समाधान

डा0 साधना अवस्थी*

सड़क यातायात दुर्घटना एक अत्यंत घातक घटना होती है जो सड़कों पर वाहनों की टक्कर या अनियंत्रित, अनुशासनहीन ढंग से चलने की वजह से होती है। सड़क दुर्घटना में लगभग सभी वर्ग जैसे– पैदल चलने वाले, साईकिल चालक, बच्चे, बुर्जुग और युवा वर्ग शाामिल हैं।

सड़क यातायात दुर्घटनाएं हमारे देश में निरंतर बढ़ रहीं हैं। विशेषकर महानगरों में और लगभग सभी शहरों में बहुधा तेज रफ्तार, गलत ओवरटेक, विपरीत दिशा में वाहन चलाना, नीद में कमी के होते हुए वाहन चलाना, शराब पीकर व अन्य नशा कर वाहन चलाना, मोबाइल पर बात करते हुए एवं बिना हेलमेट के वाहन चलाना आदि व यातायात के नियमों का उल्लंघन आदि दुर्घटनाओं के मुख्य कारण हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सड़क हादसों में प्रतिवर्ष संसार के लगभग 1.2 करोड़ लोगों की मृत्यु हो जाती है तथा 50 लाख जीवनपर्यन्त अपंग होते हैं। जो लोग सड़क दुर्घटनाओं में मरते हैं या अपंग हो जाते हैं उनमें से लगभग आधी संख्या पैदल चलने वालों और दुपहिया वाहन चलाने वालों की होती है। अनुमान है कि इतनी संख्या में दुर्घटनाओं एवं अपंगता के शिकार व्यक्तियों के गुजारा भत्ता, पुनर्वास एवं चिकित्सकीय व्यय में देश का लगभग 4 प्रतिशत सकल उत्पाद खर्च करना पड़ता है। यह भी अनुमान है कि सही सीटबैल्ट से 60%, हेलमेट पहनने से 45% तथा तेज रफ्तार नियंत्रण से 90% बचाव होता है। सड़क में सावधानी व संतुलन से वाहन चलाना नितान्त आवश्यक है। सड़क दुर्घटनाओं को रोकने अथवा कम करने के लिए हमें नाना प्रकार के कदम उठाने की आवश्यकता है। कानूनों का पालन, सामाजिक जागरूकता, उचित सड़क यातायात संकेतों को समझना एवं उनका प्रदर्शन करना तो आवश्यक है ही, साथ ही बुजुर्गों सहित सभी को जन्मतिथि से नहीं बल्कि शारीरिक व मानसिक दक्षता के आधार पर ड्राइविंग लाइसेंस देने की दिशा में सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है।

गंभीरता से अनुभव किया जा रहा है कि बसों व अन्य सामान्य वाहनों, जैसे टैंपो, टैक्सी आटो, ट्रक आदि में चालक का तीव्र गति अथवा शराब पीकर वाहन चलाना आम होता जा रहा है जिससे दुर्घटनाएँ बढ़ रही हैं। विडम्बना है कि एक लापरवाह ड्राइवर वाहन में बैठे अनेकों यात्रियों की जान खतरे में डालता है तथा यात्री निर्जीव होकर चुपचाप जान हथेली पर लिये सहमे से बैठे रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में अधिकतर यात्री या तो आवाज नहीं उठाते या कुछ लोग वाहन के लापरवाही से चलाने का विरोध करते हैं तो उनकी बात नही सुनी जाती।

*सहायक प्रोफेसर, सामुदायिक चिकित्सा विभाग, राजकीय मेडिकल कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तर प्रदेश।

अतएव, जन वाहनों (Public transport) में यात्रा करने वालों का कर्त्तव्य है कि वे नशे में या तीव्र गति से चलाने वाले ड्राइवर को नियंत्रित करें व डरें नहीं। ऐसी स्थिति में गाड़ी को तुरन्त रूकवाकर इसकी सूचना निकटस्थ पुलिस थाने तथा मीडिया को दें तथा ड्राइवर के विरूद्ध कार्यवाही सुनिश्चित करें। शिक्षित तथा जागरूक यात्रियों की यह जिम्मेदारी भी है, जिससे एक अच्छा संदेश जाने के साथ–साथ ड्राइवर की लापरवाही पर लगाम लगेगी। अंततोगत्वा सुरक्षित यातायात की दिशा में एक सकारात्मक वातावरण निर्मित होगा।

सड़क सुरक्षा पर वैश्विक स्थिति रिपोर्ट

1. सड़क यातायात दुर्घटना एक प्रमुख लेकिन उपेक्षित सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती है तथा इसकी रोकथाम के लिए प्रभावी एवं ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

2. सड़क यातायात एक व्यवस्था है जिसका हर वर्ग, जाति, उम्र के लोग प्रतिदिन प्रयोग करते हैं। अतः सड़क सुरक्षा एक अति महत्वपूर्ण विषय है।

3. दुनिया भर के लगभग 1.3 करोड़ लोग प्रतिवर्ष सड़क हादसों में मरते हैं तथा 20 से 50 करोड़ के बीच लोग प्रतिवर्ष शारीरिक चोटों से ग्रस्त हो जाते हैं।

4. सड़क दुर्घटनाएं दुनिया भर में 30 से 44 वर्ष की आयु के लोगों में मृत्यु का तीसरा महत्वपूर्ण कारण है तथा 5 से 29 वर्ष के लोगों में दूसरा बड़ा कारण है।

5. यह अनुमान है कि तत्काल कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया तो सड़क दुर्घटनाओं के कारण मौतों की संख्या कम तथा मध्यम आय वाले देशों में 2020 तक 80 प्रतिशत तक बढ़ जायेगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं विश्व बैंक की संयुक्त रिपोर्ट के अनुसार सड़क दुर्घटनाओं से होने वाली मौतों और चोटों को रोका जा सकता है।

6. सड़क सुरक्षा पर 178 देशों के सर्वेक्षण से वैश्विक रिपोर्ट दर्शाती है कि सड़क दुर्घटनाऐं एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है जिसमें कि कम और मध्यम आय वाले देश ज्यादा ग्रसित हैं।

7. सड़क दुर्घटनाओं में मारे जाने वाले लोगों में लगभग आधे पैदल चलने वाले, साईकिल चालक और मोटर साइकिल वाले होते हैं।

8. देश में सड़क सुरक्षा पर व्यापक कानून तथा सड़क सुरक्षा कार्यक्रम को और अधिक सुदृढ़ करने की जरूरत है।

सड़क दुर्घटनाओं की संख्या भारत में सबसे ज्यादा है

1. सड़क दुर्घटनाओं के कारण होने वाली मौतों में से 85 प्रतिशत विकासशील देशों में होती हैं।

2. सड़क दुर्घटनाओं में भारत सबसे आगे है प्रतिवर्ष 13 लाख लोगों की मृत्यु के साथ, भारत चीन से आगे निकल गया है और अब सड़क यातायात दुर्घटना दर भारत में सबसे ज्यादा है।

3. अकेले भारत में वर्ष 2008 की तुलना में सन 2009 में सड़क दुर्घटनाओं की मृत्यु दर में 14 प्रतिघण्टे की दर से बढ़ोतरी हुई है जोकि सन 2008 में 13 प्रतिघण्टे थी।

4. दुनिया भर में सड़क दुर्घटनाओं के कारण होने वाली मौतों में भारत का लगभग 10 प्रतिशत औसत है। दूसरी ओर 12 लाख 75 हजार लोग सड़क पर प्रतिवर्ष गम्भीर रूप से घायल हो जाते हैं।

5. राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो की ताजा रिपोर्ट के अनुसार सड़क दुर्घटनाओं के कारण मौतों की संख्या 13 लाख 5 हजार प्रतिवर्ष हो गई है।

6. ट्रक और दुपहिया वाहन 40% से ज्यादा मौतों के लिए जिम्मेदार हैं।

7. राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो रिपोर्ट के अनुसार शराब पीकर ड्राइविंग करना इन दुर्घटनाओं का एक प्रमुख कारण है।

8. भारत में चालक प्रशिक्षण में व्यावसायिकता की कमी है, तथा अप्रशिक्षित चालकों के अनुपात में वृद्धि और एक सकारात्मक ड्राइविंग संस्कृति की कमी भी है।

युवा और सड़क सुरक्षा पर पेश की गई विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार सड़क दुर्घटनायें 10 से 24 वर्ष के आयु के बीच युवाओं की मृत्यु का प्रमुख कारण है। 25 वर्ष से कम आयु के लगभग 40 हजार युवा प्रतिवर्ष तथा 1049 जवान प्रतिदिन दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं। रिपोर्ट बच्चों की तरफ भी इशारा करती हैं चूंकि बच्चे भी सड़क का प्रयोग करते हैं। अतः उनकी सुरक्षा के लिए विशेष उपायों की जरूरत है।

युवा वर्ग और सड़क दुर्घटनाएं

सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि युवा वर्ग का वाहन चलाने का व्यवहार वस्तुतः जोखिम भरा होता है। कारण चाहे जो भी हों युवाओं में अनियंत्रित, तीव्रगति एवं लापरवाही से वाहन चलाने की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है। समुचित मार्गदर्शन के आभाव और उचित प्रशिक्षण की कमी से वाहन चलाने की दिशा में युवाओं द्वारा दुर्घटनाएं निरंतर बढ़ रहीं हैं। इसके अतिरिक्त सड़कों का आकार छोटा होना, गुणवत्ता का आभाव, अत्यधिक भीड़–भाड़ और युवाओं का जोखिम भरा रवैया सड़क दुर्घटना का कारण बनते हैं। युवक वर्ग में तेज गति से वाहन चलाना, शराब पीकर गाड़ी चलना, हेलमेट का न पहनना, लालबत्ती को

नजर–अंदाज करना, गलत ढंग से ओवरटेक करना तथा सीट बैल्ट का प्रयोग न करना महत्वपूर्ण कारण हैं।

सड़क दुर्घटनाऐं और आर्थिक पक्षः

सड़क दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्ति और उसके परिवार को आर्थिक और शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पीडित यदि एक मात्र अर्थोपार्जन करने वाला हो तो समस्या अधिक गंभीर हो जाती है, परिवार के अन्य सदस्यों के सामने उदरपोषण की विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विकलांगता एवं अपंगता की स्थिति में पीडित को चिकित्सा उपलब्ध कराना एवं मानसिक संबल देना नितान्त आवश्यक है। इस प्रक्रिया में परिजन, सगे संबंधी कदाचित मदद तो करते हैं किन्तु असमय आई इस विपदा का मुकाबला करना एक चुनौती बन जाती है। सभी को एक मानसिक पीडा पहुँचती है।

मानव पीड़ा के साथ देश के ऊपर भी इसका आर्थिक प्रभाव पड़ता है। पुनर्वास एवं आर्थिक सहायता के लिए धन जुटाना बहुत जरूरी है क्योंकि पीडितों के जीवन और मरण का प्रश्न उठ खड़ा होता है। इस संदर्भ में आंकडे बताते हैं कि प्रति वर्ष भारत में दुर्घटनाओं पर करोडों रूपये व्यय हो जाते हैं। इनमें वाहन की मरम्मत, संपत्ति की क्षति, पुलिस और बीमा कंपनियों की प्रशासनिक कार्यवाही का व्यय, दवाईयों पर होने वाला खर्च आदि तो होता ही है, मानसिक, शारीरिक एवं भुगतने आदि का सामाजिक कष्ट और पीडा की कीमत का मूल्यांकन करना अव्यक्त कठिन काम है।

सोचें और कार्यान्वित करें :– 10 शीर्ष सड़क सुरक्षा युक्तियाँ :–

1. **ड्राइविंग करते समय मोबाइल का प्रयोग न करें :**

फोन कॉल लेने या कॉल करने, यहां तक की हाथ से फोन को उठाने या उपयोग से ड्राइविंग में ध्यान विचलित होता है और यह निस्संदेह दुर्घटना का कारण बन सकता है।

2. **सीटबैल्ट का प्रयोग करना** :–

क्योंकि बिना बैल्ट लगाए हुए पीछे का यात्री, टक्टर के समय आगे वाले को चोट पहुँचा सकता है जोकि गम्भीर हो सकती है। सीट बैल्ट के अनेक फायदे हैं, इसके लगाने से सर्वप्रथम आपको मानसिक संतुष्टि मिलती है और यदि वाहन की टक्कर हुई भी तो संभावना है कि आप अपने स्थान पर बने रहेंगें और चोट पहुँचने या वाहन के अन्दर तथा बाहर टकराने की कम संभावना है। बैल्ट बाँधने से घुमावदार सड़क पर भी आप अपने आप को सुरक्षित अनुभव करेंगें। बहुत से लोग बेल्ट लगाने को गंभीरता से नही लेते, वे इसे तौहीन भी समझते हैं या सोचते हैं कि मुझे कुछ नही होगा इत्यादि।

3. **शराब और नशे में गाड़ी न चलाना** :–

शराब पीकर गाड़ी चलाना, सोचने, समझने तथा निर्णय लेने की क्षमता को कम करता है, यह सुरक्षित नहीं है। अधिकतर सड़क दुर्घटनाओं का मुख्य कारण नशा करके वाहन चलाना ही है।

4. **धीमी और नियन्त्रित गति**

यह प्रवृत्ति सड़क दुर्घटनाओं में कमी लाती है। धीमी गति से वाहन चलाने से दुर्घटना का खतरा बहुत हद तक टलता है क्योंकि वाहन नियंत्रण में रहता है, इससे हम वाहन से होने वाली मृत्यु दर को कम कर सकते हैं।

5. **बच्चों का ध्यान**

वाहन चलाते समय स्कूलों, बसों या आईसक्रीम वैन के पास बच्चों का अतिरिक्त ध्यान रखना बेहद जरूरी है। संकरा रास्ता, तंग गलियां, बच्चों का उन्मुक्त आवागमन एवं दौड़ना या सड़क पार करना आदि दुर्घटना का कारण बन सकते हैं।

6. **रूकना या आराम करना**

ऐसा माना गया है कि थकान सड़क दुर्घटनाओं के लिए 10 प्रतिशत से भी ज्यादा जिम्मेदार है हर दो घण्टे की यात्रा में कम से कम 15 मिनट का विश्राम करना उपयुक्त होता है। इससे चालक पर्याप्त रूप से अपने आपको तरोताजा पाता है और आत्मविश्वास के साथ वाहन चलाता है।

7. **सुरक्षित रूप से चलना**

वाहन चालक के साथ ही साथ सभी नागरिकों को भी सड़क पर चलते समय यातायात नियमों का पालन करना आवश्यक है। सड़क पार करने में जेबरा क्रॉसिंग का प्रयोग अवश्य करना चाहिए तथा फुटपाथ पर चलना चाहिए। अत्यधिक यातायात वाली सड़कों पर किसी भी हालत में असुरक्षित जगह से सड़क पार करना ठीक नहीं।

8. **आशा और निरीक्षण**

हमेशा अन्य सड़क उपयोगकर्ताओं का भी ध्यान रखें तथा अपने वाहन के दर्पण का प्रयोग करें और लेन बदलते समय आगे–पीछे, दायें–बायें देखना न भूलें। इतना ही नही वाहन के पीछे लगी लाल बत्ती सदैव ठीक रहे।

9. **बच्चों के लिए सुरक्षा सीट का प्रयोग**

बच्चों के लिए सदैव सुरक्षा सीट का प्रयोग करें। ज्यादातर बच्चे वाहन में अपनी चंचलता प्रदर्शित करते हैं, उछल–कूद और ताक–झांक का उनका स्वभाव उभरकर सामने आता है, वे बहुधा ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जिससे वाहन के संचालन में असुविधा होती है अतएव उन्हें सुरक्षित सीट पर ही बैठाना उचित होगा। ऐसा करने से बच्चे भी सुरक्षित रहेंगें और वाहन चालक भी सहजता से वाहन चला सकेंगे।

10. **उचित दूरी बनाये रखें**

हमेशा अपने और आगे जाने वाले वाहन के बीच पर्याप्त अन्तराल बनाये रखने के लिए उचित दूरी बनाये रखें। प्रयास हो कि सामने जाने वाले (अधिकतर चार पहिए के) वाहन के पहिए पीछे आने वाले वाहन के चालक को साफ दिखाई दे, ऐसा करने से पर्याप्त दूरी अपने आप बनी रहेगी।

संदर्भः

(1) सड़क नियंत्रण शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली की सूचना के आधार पर।
(2) वेबसाइट www.newsindea-times.com/2002/09/13/med30 से
(3) वेबसाइट www.thinkroadsafety.gov.uk/advice/toptentips.htm से
(4) वेबसाइट www.who.int/world-health-day/2004/en से

जनस्वास्थ्य पर मोबाइल फोन के उपयोग के प्रभाव

आशुतोष *

परिचय

आज का युग सूचना क्रांति का युग कहा जाता है तथा सूचनाओं के आदान- प्रदान में मोबाइल फोन ने एक क्रांतिकारी भूमिका निभाई है। आज मोबाइल फोन हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा बन गया है। वर्ष 2010 के अंत तक भारत में मोबाइल फोन की अनुमानित संख्या लगभग 67 करोड़ से अधिक हो गई है।

कोई भी तकनीक हमें क्रमशः अपने ऊपर निर्भर बना लेती है। वह एक हाथ से हमे कुछ देती है तो दूसरे हाथ से कुछ न कुछ ले भी लेती है। मोबाइल ने भी ऐसा ही किया है। उसने हमें सुविधायें तो अवश्य प्रदान की है, किन्तु हमारे जीवन में अनेक पेचीदगी उत्पन्न करके कई समस्याएं भी सामने खड़ी कर दी हैं। एक तरफ मोबाइल फोन की सकारात्मक उपयोगिता विभिन्न रूपों में हमारे समक्ष है। मोबाइल फोन के माध्यम से दूर-दूर के लोगों से संपर्क बनाया जा सकता है, क्योंकि इसने लोगों के बीच की दूरी प्रायः समाप्त कर दी है, दूरस्थ रोगी के इलाज के लिए चिकित्सक से परामर्श लेने के लिए बात की जा सकती है, व्यक्ति विशेष की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है इत्यादि। यदि हम मोबाइल फोन के अन्य नकारात्मक पक्ष पर ध्यान दें तो इसका उपयोग करते समय इससे उत्सर्जित होने वाली विकिरण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

अभी कुछ समय से मोबाइल फोन से उत्सर्जित विकिरण के मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन शोध का विषय रहा है। इस अध्ययन के अनुसार मोबाइल फोन से उत्सर्जित विकिरण संभवतः उच्च रक्तचाप, सिरदर्द, ब्रेन ट्यूमर अथवा इयर्स एवं यहाँ तक कि कैंसर तथा अन्य उपयोग के कारण सभी लोग मोबाइल फोन से उत्सर्जित विकिरण के कारण होने वाले संभावित नुकसान से भली-भाँति परिचित नहीं हैं। इस विषय पर किए गए अधिकतम शोध अध्ययनो में दावा किया गया है कि इस प्रकार के विकिरण शरीर की कोशिकाओं,मस्तिष्क अथवा प्रतिरोधक तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं, इससे कैंसर से लेकर अल्जाइमर जैसे रोगों की संभावना बढ़ती है। चूहों पर किए गए एक शोध में उनके संपूर्ण स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पाया गया। परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि इस शोध को मानव स्वास्थ्य पर कहाँ तक लागू किया जा सकता है।

* सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित 'फैक्ट शीट इलेक्ट्रोमैग्नीच्यूडिक फील्ड एण्ड पब्लिक हैल्थः मोबाइल फोन्स'' में भी मोबाइल फोन द्वारा तत्कालिक प्रभावों को बताया गया है, जिसके अनुसार मोबाइल फोन में रेडियो तरंगों के माध्यम से सूचनाओं का आदान प्रदान होता है। इस दौरान रेडियो तरंगों की ऊर्जा शरीर की त्वचा में रोपित की जाती है, जिससे मस्तिष्क एवं शरीर के अन्य संवेदनशील अंगों का ताप बढ़ जाता है। इस उर्जा ताप का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

डॉ. जेल हैन्सन मिल्ड के स्वीडन में हुए एक शोध के अनुसार लंबे समय तक मोबाइल फोन का उपयोग करने से सिरदर्द, त्वचा में जलन तथा थकावट इत्यादि समस्याएँ पैदा होती है। उपरोक्त शोधों तथा तथ्यों से स्पष्ट है कि मोबाइल का लंबे समय तक प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक ही साबित हो रहा है। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, मोबाइल उपयोगकर्ताओं के नुकसान को न्यूनतम करने के लिए कुछ बातें व्यवहार में लानी चाहिए। यहाँ कुछ सुझाव दिए गए हैं, जिनका हम ध्यान रख सकते हैंः

1. विकिरण के जोखिम को न्यूनतम करें - इसका अर्थ है अधिक लंबे समय तक मोबाइल से बातचीत करने से बचने का पूरा प्रयास करें। केवल दो मिनट की बातचीत से मस्तिष्क की विद्युत गतिविधि में एक घंटे तक का प्रभाव देखा गया है।
2. बच्चों को मोबाइल का प्रयोग अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर ही करने दें।
3. जब मोबाइल का उपयोग न कर रहे हों तब अपने शरीर से जितना संभव हो दूर रखें, क्योंकि मानव शरीर का निचला हिस्सा विकिरण को अधिक तेजी से शोषित करता है।
4. गर्भवती महिलाएँ मोबाइल का इस्तेमाल बहुत आवश्यकता पड़ने पर हीं करें, इससे उनके बच्चों का व्यवहार खराब होने का खतरा रहता है। जो बच्चे जन्म से पहले और बचपन में मोबाइल फोन के संपर्क में आते हैं उनमें मोबाइल से दूर रहने वाले बच्चों की तुलना में व्यावहारगत परेशानियाँ होने का खतरा 50 प्रतिशत अधिक होता है।
5. मोबाइल खरीदते समय स्पेशिफिक ऑब्जॉर्पसन रेट (एस.ए.आर.) मूल्य वाले मोबाइल चुनें। निर्देश मैनुअल में दिए गए एस.ए.आर. संख्या की जाँच करें। एस.ए.आर. मूल्य जितना कम होगा विकिरण उतना ही कम होगा।
6. संक्षिप्त संदेश का प्रयोग अधिकतर करें, आवश्यकता पड़ने पर ही कॉल करें।
7. जिस स्थान पर मोबाइल में सिग्नल कम हो, वहाँ मोबाइल का उपयोग न करें, उस स्थान की तलाश करें, जहाँ सिग्नल अच्छे आ रहे हों।
8. मोबाइल की बैटरी लो होने पर फोन का उपयोग न करें, इससे मोबाइल द्वारा उत्सर्जित विकिरण कई गुना बढ़ जाता है।
9. मोबाइल उपयोग न होने पर स्विच बंद कर दें।

एस.ए.आर. मूल्य क्या है?

वास्तव में, एस.ए.आर. (Specific Absorption Rate) मूल्य मोबाइल से बात करते समय मानव शरीर द्वारा शोषित विकिरण का मापदंड है। अर्थात् जिस मोबाइल का एस.ए.आर. मूल्य जितना कम होता है, उससे उत्सर्जित होने वाले विकिरण की उतनी ही कम मात्रा शरीर द्वारा शोषित होती है। शरीर द्वारा शोषित यही विकिरण शरीर के लिए नुकसानदेह है। यू.सी.एन.आई.आर.पी. (इंटरनल कमीशन ऑन नन-आयोनाइजिंग रेडिएशन प्रोटेक्शन) द्वारा निर्धारित एस.ए.आर. सीमा 2.0 वाट/किलोग्राम है। इससे अधिक एस.ए.आर. मूल्य वाले मोबाइल फोन हानिकारक हो सकते हैं। अधिकतर मोबाइल फोन निर्माता अपने उत्पादों की एस.ए.आर. मूल्य अपने बेवसाइट पर देते हैं। जिससे आप अपने लिए उपयुक्त न्यूनतम एस.ए.आर. मूल्य का मोबाइल फोन चुन सकते हैं।

भारत में किए गए प्रयास : दुनिया के अधिकतर देशों में मोबाइल फोन के सुरक्षित उपयोग के बारे में दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं तथा मोबाइल कंपनियों को अपने उत्पादों पर एस.ए.आर. मूल्य स्पष्टतः लिखने के निर्देश दिए गए हैं। अमेरिका में जहाँ एस.ए.आर. का अधिकतम निर्धारित स्तर 1.6 वाट/ किलोग्राम है वहीं यूरोपियन मानक के अनुसार एस.ए.आर. का अधिकतम स्तर 2.0 वाट/ किलोग्राम से कुछ ज्यादा है।

भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा गठित कमेटी द्वारा विकिरण के स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। जिसके परिणामों को राष्ट्रीय नीति बनाने के लिए उपयोग किया जायेगा। कमिटी ने मोबाइल फोनों के एस.ए.आर. मूल्य को निर्धारित सीमा (1.6 वाट/किलोग्राम) के अंदर रखने की सिफारिश की। कमेटी ने सुझाव दिया कि ''लोगों के लिए स्वस्थ रहना, आरामदायक जीवन से आवश्यक है।'' उपभोक्ताओं को वैज्ञानिक विकास को समझना चाहिए तथा सीमित उपयोग करना चाहिए। भारत सरकार नागरिकों के उत्तम विकास के लिए प्रयासरत है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई.सी.एम.आर.) ''स्वास्थ्य पर मोबाइल फोन के प्रभाव'' विषय पर एक विस्तृत शोध कर रहा है, जिससे मोबाइल फोन के हानिकारक प्रभाव को और अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलेगी।

निष्कर्ष : चूंकि मोबाइल हमारी आवश्यकता बन चुका है अतः इसे हम अपने से अलग तो नहीं कर सकते, परंतु स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ सावधानियाँ तो रख ही सकते हें, जिससे विकिरण से होनेवाले दुष्प्रभाव को कम किया जा सके।

अभी तक हुए शोधों से यह पूर्णतः स्पष्ट नहीं हुआ है कि उत्सर्जित विकिरण जन स्वास्थ्य पर कितना दुष्प्रभाव डालता है, चूँकि अधिकतर अच्छे शोध जानवरों पर ही हुए हैं जिससे मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव का सही आकलन नहीं किया जा सकता।

अतः इस विषय पर एक विस्तृत शोध एवं अध्ययन की आवश्यकता है। सरकार को इस विषय पर और अधिक ध्यान देते हुए मोबाइल निर्माता कंपनियों के लिए विकिरण के संबंध में मानकों को निर्धारित करने चाहिए और इन मानकों का कड़ाई से पालन सुनिश्चित करना चाहिए। प्रत्येक मोबाइल निर्माता को अपने सभी उत्पादों पर एस.ए.आर. मूल्य को स्पष्टतः अंकित करने के लिए निर्दिष्ट करना चाहिए एवं न्यूनतम एस.ए.आर. मूल्य वाले मोबाइल फोनों के उत्पादन के लिए निर्माताओं को बाध्य करना चाहिए जिससे मोबाइल फोन के जनस्वास्थ्य पर प्रभाव को कम किया जा सके।

संदर्भः

1. योजना, अक्टूबर, 2009 (अंक -10)
2. नवभारत टाइम्स, 07 फरवरी, 2011
3. डेक्कन हेराल्ड, 03 फरवरी, 2011
4. द हिन्दू, 05 अक्टूबर, 2010 (http://www.thehindu.com)
5. India Today, 03 फरवरी, 2011 (www.indiatoday.com)
6. http://www.mobile-phone-directory.org
7. http://www.allindianewssite.com
8. http://thatsindi.oneindia.in/lifestyle/health

मोबाइल फोन और हमारा स्वास्थ्य

डॉ. इन्दु ग्रेवाल *
कुमारी उर्वशी गुप्ता **

आज मोबाइल फोन का प्रयोग लगभग हर व्यक्ति कर रहा है। बच्चे हों या युवा, ग्रामीण हों या शहरी, सभी मोबाइल फोन का प्रयोग कर रहे हैं। वैज्ञानिकों का यह मत है कि मोबाइल फोन उपभोक्ता जितनी बार कॉल करता है उतनी ही बार रेडियो आवृति संकेत संचारित करती हैं। ये रेडियो आवृत्ति संकेत बिल्कुल वैसे ही होते हैं जो ए.एम. या एफ. एम. रेडियो या घरेलू उपकरण जैसे माइक्रोवेव के इस्तेमाल में उत्पन्न होते हैं। यही निम्न आवृत्ति विकिरण ही मोबाइल फोन उपभोक्ता के अंदर परेशानी फैलाने का मुख्य कारण है। प्रश्न उठता है कि क्या आज के दौर में मोबाइल फोन का बढ़ता हुआ चलन स्वास्थ्य को जोखिम में डाल रहा है? और यदि इसके उपयोग से स्वास्थ्य की हानि हो रही है तो किस तरह इन दुष्प्रभावों से हम बच सकते हैं और हमें कौन से कदम उठाने होंगे। यद्यपि इस विषय पर कई अध्ययन भी हुए हैं लेकिन उनके परिणाम परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। कई शोधकर्ताओं का कहना है कि अंतिम जवाब अभी भी हमारे पास नहीं है, संभवतः ठोस वैज्ञानिक प्रमाण एकत्रित करने में समय लगेगा। जो भी अध्ययन हुए हैं उनके अधार पर निम्नलिखित खतरों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

1. **कैंसर का खतरा :** पिछले दशक में हुए अध्ययनों के नतीजों के अनुसार जब मोबाइल हैंडसेट को उपभोक्ता इस्तेमाल करता है, तो उसमें से निकलने वाली रेडियो तरंगों का कुछ भाग मस्तिष्क अवशोषित कर लेता है। शोधकर्ताओं का मानना है कि यही रेडियो तरंगें मस्तिष्क में कैंसर पैदा करती हैं। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार बच्चों का मस्तिष्क बड़ों की अपेक्षा दो गुना विकसित तरंगों को अवशोषित करता है, क्योंकि उनके सिर और मुँह का आकार छोटा होता है और उनका तंत्रिका तंत्र अविकसित होता है। अभी तक के सभी परिणाम परस्पर विरोधी तो हैं, फिर भी फिनलैंड, फ्रांस व कई अन्य देशों ने चेतावनी दी है और बच्चों के माता-पिता से आग्रह किया है कि वे अपने बच्चों को जहाँ तक संभव हो मोबाइल फोन इस्तेमाल न करने दें।

मोबाइल फोन द्वारा छोड़ी गई रेडियो आवृत्ति ऊर्जा धीरे-धीरे शरीर के अंदर कैंसर पैदा करती है। इसके द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में कैंसर हो सकता है - जैसे दिमाग का कैंसर या दिमाग का ट्यूमर। इसके द्वारा नसों का कैंसर भी हो सकता है जो कान और दिमाग को जोड़ती हैं। इससे सैलिवरी ग्लैंड में भी कैंसर हो सकता है क्योंकि यह भी सिर के पास है।

* मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी कार्यालय, दक्षिणी जिला, नई दिल्ली।
** कम्प्यूटर आंकड़ा प्रविष्टि प्रचालक, मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी कार्यालय, दक्षिणी जिला, नई दिल्ली।

अब तक हुए अध्ययनों के आधार पर विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि मौजूदा प्रमाण के आधार पर एहतियातिक सिद्धांत को अपनाना चाहिए क्योंकि अध्ययन के नतीजे परस्पर विरोधी हैं।

2. पुरूष प्रजनन पर प्रभाव : पुरूषों में देखा गया है कि वे अक्सर मोबाइल फोन को अपनी पैन्ट की जेब में रखते हैं या बेल्ट में टाँगकर रखते हैं। क्लीवलैंड क्लिनिक शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार यदि मोबाइल फोन को अंडकोष के पास रखा जाता है तो वह शुक्राणु की गुणवत्ता को खराब कर सकते हैं। यह शोध लेख प्रजनन और बाँझपन पत्रिका में प्रकाशित है।

3. नींद पर प्रभाव : यूरोप के शोधकर्ताओं के किशोर वर्ग में किए गए अध्ययन के अनुसार मोबाइल फोन नींद को प्रभावित करता है। इस अध्ययन में दो वर्गों को शामिल किया गया। एक युवा वर्ग फ़ोन का कम से कम प्रयोग करता था और दूसरा एक दिन में 15 से ज्यादा कॉल करता था । कम कॉल करनेवाले युवा की बजाय ज्यादा कॉल करने वाले युवाओं में नींद आने में और सोए रहने में परेशानी होती थी। लगभग यही नतीजे ज्यादा टेक्स्ट एस.एम.एस. करने वाले युवाओं में भी मिले।

4. सुनने में कमी : पी.जी.आई.एम.ई.आर, चंडीगढ़ में किए गए एक प्रारम्भिक अध्ययन के अनुसार जो लोग 4 घंटे से ज्यादा मोबाइल फोन पर बात करते हैं, उनमें उच्च आवृत्ति की ध्वनि सुनने की कमी उन लोगों की अपेक्षा ज्यादा होती है जो एक घंटे से ज्यादा बात करते हैं।

5. यातायात दुर्घटनाएँ : शोध में स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि जब वाहन चलाते समय मोबाइल फोन या ''हाथ मुक्त'' (हैण्ड्स फ्री) किट का प्रयोग किया जाता है, तो 3-4 गुणा ज्यादा दुर्घटनाएँ घटती हैं। यद्यपि यातायात नियमों के अंतर्गत वाहन चलाते समय मोबाइल फोन का उपयोग करना वर्जित है, फिर भी इसकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

6. दिल की बीमारी का खतरा : मानव हृदय उसके शरीर का महत्वपूर्ण और नाजुक अंग है। पूरा शरीर हमारे दिल पर ही आश्रित रहता है। जब भी कोई उपभोक्ता मोबाइल फोन को अपनी कमीज़ की जेब में रखता है, तो उससे निकलने वाली तरंगें हमारे दिल पर गहरा असर डालती है। रक्त के प्रवाह पर भी इनका बुरा उसर पड़ता है। अक्सर लोगों में सीने के दर्द की शिकायत रहती है। परंतु वे लोग इस बात को दरकिनार कर देते हैं कि यह समस्या उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए मोबाइल फोन से भी हो सकती है। ब्रिटेन में हुए एक अध्ययन के अनुसार 100 में से सात व्यक्ति मोबाइल के उपयोग और उसे हृदय के समीप वाले जेब में रखते हुए रोगी बनते हैं।

7. विद्युत चुम्बकीय बाधा : जब मोबाइल फोन को कुछ मेडिकल उपकरणों जैसे पेसमेकर, इंप्लान्टेबल डीफिब्रीलेटर (implantable defibrilators) या कुछ श्रवण उपकरण के पास में प्रयोग किया जाता है तो उनके प्रयोग में बाधा उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है।

सुरक्षात्मक उपाय

भविष्य में मोबाइल फोन से होने वाले संदिग्ध खतरों से बचने के लिए सुरक्षात्मक उपाय अपनाना चाहिए। सुरक्षात्मक सिद्धांत का अर्थ है - वह नीति जो जोखिम प्रबंधन के लिए उन हालातों में प्रयोग की जाती है जहां वैज्ञानिक नतीजे अनिश्चित होते हैं। दूसरे शब्दों में यदि वैज्ञानिक नतीजे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे हैं तथा किसी वस्तु से बहुत अधिक खतरा है तो उसके लिए सावधानियाँ बरतनी चाहिए, बजाय इसके कि किसी वैज्ञानिक नतीजे का इंतजार किया जाए। वस्तुतः मोबाइल फोन के प्रयोग करने की दिशा में हमें निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिएः

1. हाथ मुक्त किट इस्तेमाल करना चाहिए जिससे सिर व दिमाग को विकिरण से बचाया जा सके। क्योंकि हैंड सेट हमारे मस्तिष्क और हृदय से जितना दूर रहेगा उससे उत्पन्न विकिरण का प्रभाव संभवतः उतना ही कम होगा।
2. जब मोबाइल फोन का प्रयोग नहीं कर रहे हों तो उसे अपने शरीर से दूर रखें। अनावश्यक हाथ में रखना और जेब में तथा तकिया के नीचे रखना ठीक नहीं है।
3. मोबाइल फोन के द्वारा कम से कम बात करनी चाहिए।
4. बच्चों को मोबाइल फोन कम इस्तेमाल करने दें, जिससे उनके विकसित हो रहे शरीर पर दुष्प्रभाव न पड़े।
5. आजकल एक छोटी 'चिप' उपलब्ध है जो माइक्रोवेव विकिरण अवशोषित कर लेती है। इस चिप को मोबाइल फोन में लगवाने से शरीर को विकिरणों के दुष्प्रभाव से बचाया जा सकता है।
6. वाहन चलाते समय मोबाइल फोन इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। इससे न केवल विकिरण के दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है अपितु वाहन दुर्घटना से भी मुक्ति पाई जा सकती है।

सारांश

चूँकि हमारे पास वर्तमान में कोई प्रत्यक्ष वैज्ञानिक प्रमाण नही है कि मोबाइल फोन से कोई गहरा शारीरिक नुकसान होता है, परन्तु फिर भी हमें सुरक्षात्मक सिद्धांत अपनाना चाहिए जिससे भविष्य में फोन से उत्पन्न विकिरण से होनेवाले खतरों से बचा जा सके। अनेक शोध पत्रों और वैज्ञानिकों के छोटे-मोटे निष्कर्ष स्पष्ट संकेत देते हैं कि मोबाइल फोन से उत्सर्जित विकिरण के दुष्प्रभाव घातक भी हो सकते हैं, जिनकी भरपाई करना लगभग असंभव होगा।

संदर्भ

1. ''व्हाट आर द हेल्थ रिस्क एसोसिएटेड विद मोबाइल फोन्स एंड देयर बेस स्टेशन्स?'' ऑन लाइन प्रश्नोत्तरी, विश्व स्वास्थ्य संगठन, 05.12.2005 पुनः 19.01.2008.
2. '' इलेक्ट्रॉनिक फील्ड्स एंड पब्लिक हेल्थः मोबाइल टेलीफोन्स एंड देयर बेस स्टेशन्स'' तथ्य पत्र।
3. ''डू मोबाइल फोन्स कौज कैंसर? कैंसर रिसर्च यू.के. (05.12.2008) अभिगमन तिथि 27.05.2009.
4. इंटरलैंडी, जेनीन (19.12.2007), हाउ सेफ आर सेल फोन्स? न्यूजवीक, अभिगमन तिथिः 20.05.2009.

एड्स एवं संयमित जीवन

डा. एच.एस.विष्ट*

क्या है, एड्स, क्या है, एच.आई.वी.,
जानना है, आवश्यक, जानना है, जरूरी।

मुझे, तुम्हें, हमें व हम सभी को,
महिलाएँ, पुरूष, जवान व अन्य सभी को।

व्यवहार को संयमित करने की जिम्मेदारी,
सभी समाजों के सभी लोगों को होना है संयमित।

जन स्वास्थ्य का यह है, शुभ संदेश,
सुरक्षित व संयमित रहें, सभी समाज व देश।

पहुँचायें हम, सभी, समाजों तक यह विचार,
तभी होगी, विश्व-व्यापी पहुँच व समान मानव अधिकार ।

* पी.जी.डी.पी.एच.एम.2010-11, राज्य स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, मोतीनगर, हल्द्वानी, नैनीताल.

स्वास्थ्य सुरक्षा

नरेन्द्र विश्वकर्मा *

स्वयं करेंगे अपनी सुरक्षा औरों को देंगे ज्ञान।
स्वास्थ्य हमारा अच्छा रहे तो, हो जाये कल्याण।।

गर्भवती महिला की रक्षा, टीके लगाकर करो सुरक्षा
खान पान में हरी सब्जियाँ, अंडे-माँस-बादाम ।
स्वास्थ्य हमारा अच्छा रहे तो हो जाये कल्याण।।

कोलेस्ट्रेम का दूध पिलाना, बी.सी.जी. का टीका लगाना
दो बूँद पोलियो की दवा पिलाना, शिशु बने बलवान।
स्वास्थ्य हमारा अच्छा रहे तो हो जाये कल्याण।।

मच्छर से भैया फैले मलेरिया, गंदा पानी फैलावे डायरिया
घर में कूड़े के ना ढ़ेर लगाना, दूर गड्ढ़े में करो निपटान।
स्वास्थ्य हमारा अच्छा रहे तो हो जाये कल्याण।।

जीवन में किशोरावस्था, नाजुक होती है ये अवस्था
मासिक धर्म बिगड़ ना पाये, रखना उनका ध्यान।
स्वास्थ्य हमारा अच्छा रहे तो हो जाये कल्याण।।

* विकासखंड शिशु स्वास्थ्य प्रबंधक, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, मुलताई (जिला-बैतूल), मध्यप्रदेश।

मधुमास

संजीव भट्टाचार्या *

सावन में घटा बरसी
तो झूम उठी धरती
फूलों को लगे पंख
उड़ने लगी बयार
सुगन्धी से भर गया
संस्थान का हर द्वार
दर्पण सा चमकने लगा
परिसर का दामन
रजनीगंन्धा सा महकने लगे
हर घर का आंगन
झरनों की फुहारों को
समेटे अपने आंचल में
पूरवा सुंदरी मन्द मन्द चली
मंदिर के प्रांगण में
घंटियों की गूँज ने
संध्या का किया श्रृंगार
स्वच्छता की चादर ऐसे फैली है
मानो हर सिंगार
निर्मल पेयजल से
संस्थान है आप्लावित
हर उत्सव के रौनक से
हम सब हैं उत्साहित
हमें गर्व हैं हम हैं संस्थान के अंग
दिनों दिन यह फले फूले लेकर नये रंग

* अनुभाग अधिकारी, प्रशासन-I, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली.

नववर्ष

डा. अवंतिका *

नववर्ष लेकर आए बस यही सौगात,
सम्पन्नता, स्वास्थ्य और समृद्धि एक साथ।

बड़ों का आशीर्वाद साथ रहे हर क्षण,
तभी जीत पाएँगे जिंदगी का हर रण।

मुस्कुराएँ आप सब, साथ रहें खुशियाँ
कदम चूमे सफलता, मिट जाए दूरियाँ।

जीवन में आए उन्नति ऐसी है आशा,
पूरी हो आपके मन की अभिलाषा।

शांति और सहिष्णुता का हो समावेश,
खुशी भरा रहे माहौल और परिवेश।

चिंता हो जाएँ दूर, प्यार मिले भरपूर
मुस्कुराहट हो मुख पर, वार्तालाप रहे मधुर।

संबंधों में आए मित्रता और माधुर्य,
रिश्तों में आए सहयोग और सामंजस्य।

ना हो ईर्ष्या, ना हो द्वेष,
नववर्ष के लिए बस यही संदेश।

* छात्रा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण प्रबंधन कार्यक्रम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान की स्थापना,राष्ट्रीय स्तर के दो भूतपूर्व संस्थानों - राष्ट्रीय परिवार नियोजन संस्थान (1962) तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रशासन एवं शिक्षण संस्थान (1964), का विलय करके मार्च 9, 1977 को हुई थी। संस्थान का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से देश में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्यक्रमों के विकास की दिशा में एक शीर्षस्थ तकनीकी संस्थान के रु प में अग्रणीय भूमिका एवं नेतृत्व प्रदान करना है। इन गतिविधियों में शिक्षा तथा प्रशिक्षण, अनुसंधान, मूल्यांकन, परियोजनाओं का संचालन, विशिष्ट सेवायें और परामर्श सेवायें प्रदान करना आदि शामिल है।

बुनियादी शिक्षा: संस्थान द्वारा अपनी शैक्षिक गतिविधियों के संचालन के माध्यम से स्वास्थ्य जनशक्ति का विकास करके देश के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों की प्रबन्धन व्यवस्था को सुदृढ़ करने की दिशा में योगदान किया जाता है। यह पाठ्यक्रम आवश्यकता पर आधारित तथा बहुअनुशासनिक स्वरुप के होते हैं। इन पाठ्यक्रमों में **(i)** एम.डी. (सामुदायिक स्वास्थ्य प्रशासन) में तीन वर्षीय स्नातकोत्तर डिग्री पाठ्यक्रम; **(ii)** स्वास्थ्य प्रशासन विषय में दो वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम; **(iii)** दूर शिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से स्वास्थ्य और परिवार कल्याण प्रबन्धन में स्नातकोत्तर सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम; तथा **(iv)** अस्पताल प्रबन्धन में स्नातकोत्तर सर्टीफिकेट पाठ्यक्रम प्रमुख हैं।

प्रशिक्षण तथा कार्यशालायें: स्वास्थ्य के क्षेत्र में सेवा-कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संचालन के माध्यम से उपयुक्त प्रकार के मानव संसाधनों का विकास करना इस संस्थान का एक प्रमुख दायित्व है। संस्थान द्वारा प्रति वर्ष लगभग 35-40 प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों/कार्यशालाओं (संस्थागत तथा बाह्य) का संचालन किया जाता है, जिनका उद्देश्य **(i)** प्रतिभागियों को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संबंधी नीतियों तथा कार्यक्रमों के उद्देश्यों और लक्ष्यों से अवगत कराना; **(ii)** इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित कराने में आ रही समस्याओं के समाधान के बारे में उनके ज्ञान का अद्यतन करना; तथा **(iii)** इनके समाधान के उपाय सुझाना है।

अनुसंधान एवं मूल्यांकन: संस्थान द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान कार्यों को वरीयता प्रदान की जाती है। अधिकांश अनुसंधान अध्ययनों का सूत्रपात संस्थान द्वारा किया जाता है जबकि कुछ अन्य परियोजनाओं का संचालन स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय तथा अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहभागी संगठनों के आग्रह पर भी किया जाता है। संस्थान द्वारा संचालित अनुसंधान को प्रमुख रुप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है अर्थात क- जैव चिकित्सा अनुसंधान; तथा ख- स्वास्थ्य प्रणालियों संबंधी अनुसंधान।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ नेटवर्किंग: अनुसंधान तथा प्रशिक्षण गतिविधियों के सुचारु संचालन की दिशा में संस्थान द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों के साथ नेटवर्किंग की स्थापना भी की गई है। इनमें स्वास्थ्य प्रबंधन विषयक राष्ट्रीय कॉन्सोर्टियम तथा स्वास्थ्य प्रणाली अनुसंधान विषयक राष्ट्रीय कॉन्सोर्टियम आदि प्रमुख हैं। यह संस्थान स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के तत्वाधान में राष्ट्रीय प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम के अन्तर्गत देश भर में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन, प्रबोधन तथा समन्वयन के लिए एक नोडल एजेन्सी के रुप में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान कर रहा है।

विशिष्ट सेवायें: संस्थान द्वारा बांझपन तथा प्रजनन विकारों के उपचार आदि के लिए क्लिनिकल सेवायें भी प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विषयों पर अनेक प्रकाशन तथा सामयिक पत्रिकायें भी प्रकाशित की जाती हैं, जिनमें 'हैल्थ एण्ड पापूलेशन - परस्पेक्टिव्स एण्ड इशूज' तथा हिन्दी लेखों की तकनीकी पत्रिका 'धारणा' उल्लेखनीय हैं। संस्थान के राष्ट्रीय प्रालेखन केन्द्र द्वारा प्रकाशन, प्रेस क्लिपिंग और संदर्भ-ग्रन्थ सूची आदि जैसी सेवायें प्रदान करने के साथ-साथ मीडिया शिक्षण स्त्रोत केन्द्र द्वारा शैक्षिक गतिविधियों के समर्थन के लिए वीडियो फिल्म लायब्रेरी का संचालन भी किया जाता है।

परामर्श सेवायें: संस्थान के निदेशक एवं संकाय सदस्यों द्वारा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण से सम्बद्ध विभिन्न विषय-क्षेत्रों में राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं स्वैच्छिक संगठनों को परामर्श सेवायें भी प्रदान की जाती हैं।

आरोग्यम् सुखसम्पदा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान

(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)

मुनीरका, नई दिल्ली-110067

वेबसाइट:www.nihfw.org

ई-मेल: director@nihfw.org